# * प्रार्थना *

प्राज्ञ पुरुषो ! मैं आपसे सविनय निवेदन करता हूं कि यह परम् पवित्र जीवन चरित्र रूप पुस्तक श्रीमान् परम पं० उपाध्यायजी महाराजने लिख कर मुझ क्षुल्लक चेतना को संशोधन करने के लिये प्रदान किया अतः मैंने आप की आज्ञानुकूल इस पुस्तक को स्वबुद्धचनुसार संशोधन किया है यदि अब भी प्रेस तथा मेरे प्रमाद से कोई अशुद्धि रहगई हो तो सख्यावान् पुरुष क्षमा करें। क्योंकि कहा भी है कि –अक्षरमात्रपदस्वर हीन व्यञ्जनसन्धि । विवर्जित रेफम् साधुभिरत्र ममक्षंतव्य । कोनविमुह्यति शास्त्रसमुद्रे॥१॥इति अपितु इस पुस्तक को श्रीयुत लाला मिट्ठीमल्ल, बाबूराम, लुधियाना निवासी तथा ला० हरभगवान्दास, शंकरदास कपूर्थलावाले मावहा लक्ष्मी बाजार लाहोर वा लाला कृपाराम, वसंतामल्ल, सैक्रेटरीजैनसभाअमृतसर और बाबू कुन्दनलाल सब ओवरसीयर, सदानंद, लुधियानानिवासी, इन धर्म प्रेमी महाशयों ने स्वव्ययसे प्रकाशित कराया है जिसके प्रभाव से उक्त महाशयों ने पूर्व से भी अतीव सुप्रख्याति की प्राप्ति की है ॥

जैनमुनि पण्डित ज्ञानचन्द्र।

# प्रस्तावना।

विदित होवे सर्व सुज्ञजनों को इस संसार चक्र में प्राणी मात्र को एक धर्म्म ही का आधार है ॥

धर्म्म के ही प्रभाव से आत्मा सद्गति को प्राप्त होता है। सो मानुष भव पाने का सारपदार्थ धर्म्म का निर्णय करना ही है अर्थात् धर्म्म निर्णय से सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति होजाती है ॥

किन्तु इस अनादि प्रवाहरूप संसार चक्र में अनेक प्रकार के धर्म्म प्रचलित हो रहे हैं जोकि (सय सयं पसंसता गरहंतापरंवयं) इससूत्रके कथनानुसार वर्ताव कररहे हैं अर्थात् स्वः मतकी प्रशंसा परमत की निंदा, करते हैं ॥

किन्तु विद्वानों का यह पक्ष नहीं है कि पर सत्य पदार्थ को भी अपनी कुयुक्तियों द्वारा कलंकित करना। विद्वानों का यही धर्म्म है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य को ग्रहण असत्य का परित्याग करना अपितु इस भारत भूमि में अनेक प्रकारके मत प्रवृतहोरहे हैं जैसे कि—

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने वेद वा एक ईश्वर को ही सृष्टि कर्त्ता माना है ॥

शंकराचार्य्य ने एक शिव को ही सर्वोत्तम बतलाया है ॥

व्यासऋषिने एक वेदान्तदर्शन को ही मुख्य रक्खा है ॥

कपिलदेव ने सांख्यदर्शन में पञ्चविंशति प्रकृतियों से ही सबकुछ मान लिया है इस प्रकार कणादमुनि गौतमाचार्य्य ने भी भिन्न २ पदार्थ माने हैं ॥

किन्तु मनुआदि ऋषियोंनेयज्ञकर्म वा सृष्टिउत्पन्न विषय अंडकादि से माना है पूर्व मीमांसको ने वेदविहित हिंसा को अहिंसा ही करके लिखा है ॥

बौद्धोंने मात्मपदार्थ को क्षणभर तथा दीपक मध्यवत् लोगों को समझाया है तथा क्षणिकम् एकवी इसनाम जैसे—कामिल्या, क्यामिया मलयूरिया, मवासीमा, भावस्या इकमाशिया, तारकिया-वाताभिया, मनामिया कुदरिया सुनी कवरिया, बहाबीया, इत्यादि अनेक ही इस के भेद हैं और देवसमाज ब्रह्मसमाज राधास्वामिलव भाखड़ा महरमीर गरीबदासीये चारवाक् ब्रह्माण्ड पुराण, बावाल सुकामत, मकूकदासिये कुमत,सांबी, मनुष्यमत्त डेवु,नानकपथी,वाममार्गादि अनेक प्रकार के मत अनेक प्रकार के तत्वभिन्न २ प्रकार से निरूपण करते हैं तथा एक एक मत की दूजर्ये अतिरिक्त सदैव ही हो रहे हैं ॥

किन्तु कष्ट तो केवल जिज्ञासु जनों को ही प्राप्त होरहा है कि वे किस मतको सच्चा मानें और किस मतको त्यागने योग्य वा ग्रहण करने वाला मानें किन्तु सत्योपदेष्टासर्वज्ञप्रणीत केवल एक जैनधर्म ही है जो सर्व प्रकार से प्राणीमात्र की रक्षा करने में कटिबद्ध है वा उद्यत हो रहा है और दया का सर्वत्र प्रचार करने का उपदेश कर रहा है ॥

और स्याद्वादरूपी तरंगों से सम्यक् ज्ञानसे प्रतिपूर्ण हैं तत्त्वपदार्थों का पूर्ण प्रकार से उपदेष्टा है जिस की स्तुति अनेक विद्वान् सततमुखसे कर रहे हैं तथा अनेक विदुषी विद्वान भी जैनमत के तत्वों को देखकर अति महत्वता प्रगट करते हैं ॥

तथा जैनसूत्रों के अनेक सरलार्थ अपापनी भाषा में उन लोगों ने करलिये हैं वा कर रहे हैं क्योंकि यह वही अनेकान्त मत है जोकि पूर्व कालमें अपनी सत्य रूपी विद्या से जय प्राप्त करता था और वर्तमान काल में भी जय प्राप्त कर रहा है ॥

और सर्वमतों से प्राचीन है क्योंकि इस जैनमत ही की महिमा रूपी मुद्रा सर्व मतोपरि अंकित होरही है ॥

अपितु शोक से लिखना पड़ता है कि अहो कालकी कैसी

है कि जिस जैनमत को परमोच्च श्रेणी में गणन करा जाता था आज उस जैनमत को बहुत से लोग नास्तिकादि नामों से पुकारते हैं ॥

तथा इस परम पवित्र अनेकान्तमतको घृणासे देखते हैं अनुचितता से व्यवहार करते हैं अर्थात् वर्ताव करते हैं ॥

सो क्या यह आर्यपुरुषोंको खेदका स्थान नहीं हैं अवश्यमेव है ॥

सो विचारनीय बात है कि यह लोकोऽपवाद केवल परस्पर की द्वेषता का ही प्रभाव है ॥

क्योंकि वर्तमान समय में श्रीजैनमत की तीन शाखायें हैं जैसे कि श्वेताम्बर जैन १, श्वेताम्बरमूर्त्तिपूजक जैन २, दिगंबरजैन ३, किन्तु श्वेताम्बरमूर्त्तिपूजक जैनोंकी भी दो शाखायें हैं जैसे कि श्वेताम्बरमूर्त्तिपूजकजैन १, और पीताम्बरमूर्त्तिपूजकजैन २, सो प्रायः पीताम्बरमूर्त्तिपूजकजैन अनुचित उपदेश वा लिखने में संकुचित भाव नहीं करते हैं–जैसे कि पीताम्बराचार्य्य आत्मारामजी का बनाया हुआ–तत्त्व निर्णय प्रासाद नामक ग्रंथ विक्रमाब्द १९५८ मुंबई इंदु प्रकाश जाप स्टॉक कं०ली०को प्रकाशित हुआ है जिसके पूर्व आत्मारामजी का चरित्र भी लिखा है जिसमें श्वेताम्बरमत को अनेक कटुक शब्द तथा अतथ्यलेख लिखेहैं सो इन्ही कारणों से उक्त आक्षेप जैनमतों पर लोक करते हैं ॥

सो यथास्थान कितनेक आक्षेपों का इस पुस्तक में उत्तर भी लिखा जायेगा क्योंकि यह पुस्तक एक महानाचार्य्य जी के जीवन की चरिया दिखलाने वाला है नतु खंडन मंडन को ॥

अपितु विचारशीलपुरुषों का धर्म्म है कि सत्यभाषणसत्यलेखन द्वारा भव्यजीवों के हितैषी बनें जिससे फिर अनुक्रम से मोक्षाधिकारी होवें क्योंकि शम दम युक्त शुद्ध पुरुषोंके गुणानुवाद करनेसे अनंत कर्मों

की वर्गणा से जीवमुक्त हो जाता है और फिर अनंत ज्ञान की प्राप्ति होती है ज्ञान से ही सर्वज्ञता है ॥

यदुक्तम् (पढमंनाणंतओदया) अर्थात् प्रथम ज्ञानतत्पश्चात् दया है सो सम्यक् ज्ञान से ही सम्यक् दर्शन प्रगट होता है तथा सम्यक् दर्शन पूर्वक ही सम्यग्ज्ञान होता है ॥

युगपत सम्यक् होने से सम्यक चारित्र भी मोहनीकर्म की क्षयोप शमता से प्राप्त हो जाता है सो इस पुस्तक में सम्यग् ज्ञान सम्यक् दर्शन सम्यक् चारित्र युक्त ही महान् पुरुष के चरित्र दिखाने के लिये ही उद्यत हुआ हूं ॥

आशा है यह चरित्र रूप मंथमभ्य जीवों के मोक्ष रूपपथमें अवश्य ही सहायक हावेगा। जिज्ञासु जनों को अवश्यमेव ही उत्कंठा होवेगी कि ऐसे त्रिगुणयुक्त महा पुरुषका क्या नाम। वा किस काल में हुये इत्यादि ॥

सो महाराज श्री का ऐसा नाम है यथा श्रीश्वेताम्बरसुधर्म गच्छीय महाचार्य्य श्रीमत्पूज्य अमरसिंहजी महाराज ॥

जिन्होंने अपनी आयुको धर्मार्थ अर्पण किया है जिन्हों ने महान् परिणामों के साथ शुद्धसंयम को धारण करके महान् ही परोपकार किया है ॥

किन्तु धर्मोपदेश में तो स्वामीश्रीमहाराजजी ने स्थानर विचर के महान् ही परोपकार किया है क्योंकि आचार्य्यमहाराज का ऐसा वैराग्य मयउपदेश था कि जिससे भव्यजीव शीघ्र ही सम्यक्त्व के लाभ को उठालेवे ॥

पुनः स्वामी जी भी परोपकारियों कि पंक्ति में शिरोमणी थे। और फिर जैनमार्ग के परमोपदेशक श्रीपूज्यजी महाराज हुए ॥

क्या भव्यगण इन महात्माओं के ऋण से मुक्त हो सके हैं कदापि नहीं भला ऐसा कौन है जो ऐसे महान् परोपकारी महात्माओं का

जीवन चरित्र सुनना न चाहे तथा ऐसा कौन है जो ऐसे महात्मा के गुणानुवाद न करे या ऐसा कौन है जो परम शान्ति मुद्राधारी सत्योपदेष्टा सद् गुणालकृत आचार्य्यपद के धारक श्रीमान् पूज्य महाराज के गुणों में रक्त न हो। अर्थात् भव्यगण गुणादि में सदैव ही रक्त हैं ॥

भव्य जीवों के हृदयरूपी कमल में उक्त महाऋषि के गुण सदैव ही विराजमान रहते हैं ॥

भव्यजीव अपने तरने के वास्ते उक्त आचार्य्यमहाराज जी के सदैव ही गुण कीर्तन करते रहते हैं क्योंकि जिन्होंने सूर्य्य समान जिनमत का इसलोक में प्रकाश किया अर्थात् स्याद्वाद्वाणी के द्वारा जीवकर्म को भिन्न२ करके दिखलाया तथा जिनके सुंदर अनेकान्तमत के व्याख्यान में अनेक ही सद्गृहस्थ उपस्थित होते थे ऐसे महामुनि का यह जीवन चरित्र है ॥

इस चरित्र ग्रथमें श्रीमान् परमपंडित आचार्य्य वर्य्य सदैवहीजय विजय करने वाले जैनधर्म्म में सूर्य समान श्री१०८पूज्यसोहनलाल जी महाराज जी ने मुझको बहुत ही सहायतादी है साथ में बहुत से जीर्ण पत्र भी प्रदान किये हैं जोकि यथास्थान इस ग्रन्थ में लिखे जायेंगे॥

और श्री श्री १०८ गणावच्छेदकउपाधि विभूषित श्रीस्वामी गणपतिराय जी महाराज जी ने भी बहुत से पूर्व इतिहास सुनाये हैं जो कि यथास्थान में दिए जायेंगे ॥

और श्रीमान् लाला बसीलाल सीताराम मलेरी नाभा वाले ने भी इस पुस्तक के लिखते समय बहुत से पुस्तकों की सहायता दी है ॥

और बहुत से भव्यजीवों की सम्मति से यह ग्रंथ लिखागया है। आशाहैकिभव्यजीवोंके लिये यह ग्रंथ अवश्यमेवही हितकारीहोवेगा॥

उपाध्याय जैनमुनि श्री आत्मारामजी।

# * जीवन चरित्र *

नमोत्थुणं समणस्स भगवतो महावीरस्सण ।

अथ श्री श्री श्री १००८ श्रीसुधर्म्मगच्छाचार्य्य श्रीमद् पूज्य अमरसिंहजी—महाराज जी का जीवन चरित्र लिखते हैं ॥

विदित होवे पंजाब (पञ्जाब) देश में एक अमृतसर नामक नगर बसता है। जो प्राचीन नगरों के गुणों करके विभूषित होरहा है ॥

जिस की मेदनी सुशोभित होरही है और नाना प्रकार के वा नाना देशों के बसने वाले नाना ही प्रकार के व्यापारी लोग व्यापार करते हैं ॥

आप* धन करके भी लोग अलंकृत होरहे हैं विविध प्रकारके बाजार अपनी २ सुन्दरता दिखारहे हैं आरामादि करके भी नगर अलंकृत होरहा है नाना ही प्रकार की लतायें कुसुम (पुष्प) प्रदान करती हैं ॥

बहुधा अन्यदेशों में *सिक्ख लोगों का तीर्थ माना जाता है ॥

किन्तु उक्त नगर में ही परम रमणीय जल करके सुशोभित एक तड़ाग (तलाव) है जिसमें स्वर्ण करके मंडित श्वेतपाषाणमय (संगमरमरका) एक स्थान बना हुआ है जिस में सिक्ख लोगों का धर्म्म पुस्तक गुरु ग्रंथ साहिब स्थापित किया हुआ है अपितु उस स्थान को हरिमंदिर श्री के नाम से लोग पुकारते हैं ॥

जिस की यात्रा के लिये अन्यदेशों के सहस्रों लोग आते हैं अर्थात् अमृतसर नामक नगर नागरिक गुणों करके संयुक्त हो रहा है ॥

---

* व्याकरण में शासवनुशिष्टौ धातु से क्यप् प्रत्ययान्त ही कर शिष्यशब्द सिद्ध होता है किन्तु अपभ्रंश रूपशब्द सिक्ख ही भाषा में सर्वत्र प्रसिद्ध हो रहा है ॥

सो तिस नगर में एक ओसवाल *तखड गोत्रवाला शेठ (श्रेष्ट-शब्द का अपभ्रंश शेठ वा सेठ शब्द है) खुशालसिंह वसता था क्योंकि महाराजा रणजीतसिंह के प्रभाव से बहुत सी ज्ञातियों में सिंहनाम की प्रथा चल पड़ी थी सो अद्यापि पर्य्यन्त भी कई ज्ञातियों में वह प्रथा उसी प्रकार चली आरही है ॥

किन्तु वह तखडगोत्री खुशालसिंह शेठ ज्वाहरात की दुकान करता था ॥

सो खुशालसिंह शेठ के तीन पुत्र उत्पन्न हुए जैसे कि बुद्धसिंह, चैनसिंह, जीवनसिंह, लाला चैनसिंह के परिवार में लाला मोहनलाल सोहनलाल रलेशाह फग्गु शाह इत्यादि सुपुरुष हुए लाला जीवनसिंह के वंश में लाला घनैयामल्ल, लाला मइयामल्ल, लाला अर्जुनमल्ल इत्यादि यह सब लाला जीवनसिंह के परिवार के हैं और लाला बुद्ध-सिंह के तीनपुत्र हुए जैसे कि लाला मोहरसिंह, मेहरचंद इन का वंश भी सुंदर प्रख्यातियुक्त हुआ जैसे कि :—

लाला मेलुमल्ल, कक्कुमल्ल, भानेशाह इत्यादि यह उक्त वंश के हैं॥

तृतीय पुत्र महा तेजवंत चन्द्र सदृश्य सौम्य श्रीमती माता कर्मो की कुक्ष से विक्रमाब्द १८६२ वैशाख कृष्ण द्वितीया के दिन उत्पन्न हुआ अर्थात् अमरसिंहजी का जन्म हुआ ॥

पिता जी ने निजपुत्र का जन्म महोत्सव अत्यानंद से किया याचक लोगों को भलीप्रकार दान देकर तृप्त किया पुनः तत् कालही सुप्रसिद्ध गणिक द्वारा अमरसिंहजी की जन्म कुंडली बन वाई लाला बुद्ध सिंह अमरसिंहजी के मस्तक को देखकर परमानंद होता था ॥

कर्मोमाताजी भी प्रियपुत्र को देखकर अपने नेत्र तृप्त करती थी किन्तु इस अनित्य ससार को भी नित्य ही समझने लगी ॥

---

* ओसवालों की उत्पत्ति का स्वरूप देखो जैन समदाय शिक्षा अपरनाम गृहस्थाश्रम शील सौभाग्य भषण माला नामग्रंथ में ॥

सम्वत् १८६२ तत्र कुंभार्के ६ तत्र सूर्य्योष्ट जन्म लग्न

सत्य है ऐसे देवरूप पुत्र के दर्शन से कौन नहीं आनंदित होता अर्थात् सर्व ही होते हैं ॥

क्योंकि अमरसिंहजी बाल्यावस्था में ही गांभीर्य चातुर्य थे पुनः पुनः माता पिता की विनय भक्ति करते थे ॥

फिर यथा योग्य कर्णवेधादि संस्कारों के पश्चात् विद्या अध्ययन संस्कार किया गया अर्थात् अमरसिंह जी पढ़ने लगे अपितु बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण थी कि अल्पकाल में ही उर्दू गणितादि सुविद्या में निपुण होगये फिर अपनी दुकान का काम करने लग गये यौवनावस्था जब प्राप्त हुई तब पिताजी ने अति महोत्सव के साथ, स्यालकोट में, लाला हरीमल्लजी (जो कि गंडेवाले ऐसे नाम से प्रसिद्ध हैं) की धर्मपत्नी बाई भागभरी जी की पुत्री श्रीमती कर्मो ज्वालादेवी जी के साथ पाणिग्रहण करवाया फिर विवाहयात्रा करके अमृतसर में आये और आनंद से फिर दिन जाने लगे ॥

किन्तु यह संसार अनित्य है कालरूपी सर्प के शिरोपरि घूमरहा है ॥ किन्तु मोह के वश प्राणी कालचक्र को भूल रहे हैं किन्तु काल जीव का भक्षण ही करता है ॥

सो कितने ही काल के पश्चात् अमरसिंह जी के माता पिता स्वर्ग वास होगये तब मृत्यु सस्कार के पश्चात् शोक दूर किया गया ॥

क्योंकि यह दिन सब पर ही खड़ा हुआ हैं इत्यादि विचारों से जब शोक दूर हो गया तब अमरसिंहजी ने सर्व काम अपनीदुकान का अपने हाथ में लिया स्तोक काल में ही नामांकित ज्योहरी हो गये ॥

और अमरसिंह जी के गृहस्थाश्रम में निवास करते हुओं के दो पुत्रियें उत्पन्न हुई ॥

एक उत्तमदेवी द्वितीय भगवान्देवी सो उत्तमदेवी का हुशोयार-पुर में लाला अम्बीरचंद के साथ विवाह हुआ और भगवान्देवी का लाला हेमराज के साथ विवाह किया गया अपितु लाला हेमराजजी भी हुशियारपुर के वसने वाले हैं ॥

और लाला अम्बीरचद के दो पुत्र हुए, लाला नारायणदास १, लाला कृपाराम२, जिन्होंने अमृतसर में जैनसभा सम्बन्धी बहुतसे कार्य किये हैं। और लाला नारायणदासजी के पुत्र लाला मुन्शीराम जी हैं। और लाला अम्बीरचद जीके एक पुत्री हुई जिसका नाम श्रीमति नारायणदेवी जी था सो नारायणदेवी जी का विवाह पट्टी नगर ज़िला लाहौर लाला वधावेशाह के साथ हुआ जिनके तीन कन्यायें हुई जिनके यह नाम है श्रीमती इन्द्रकौर१, श्रीमती पारवती२, श्रीमती भप्पी३, सो श्रीमतीइन्द्रकौरजी का विवाह कपूरथला में लाला गणेशदासजी के प्रिय पुत्र लाला हरभगवान्दासजी के साथहुआ जो आजकल लाहौर शहर में रहते हैं जिन के ४पुत्र एक कन्या है जिनके यह नाम हैं लाला-शंकरदास१, ला०दीवानचन्द२, ला०वन्सीलाल३, ला० प्यारेलाल४, और श्रीपूर्णदेवी १ ॥ जोकि इस ग्रंथ के प्रसिद्ध करनेवाले हैं और श्रीमती पारवती जी का विवाह लाहौर शहर में लाला दिचुशाह के साथ हुआ जिनके पुत्र लाला छज्जुमल्ल जी हुए और श्रीमती सुखदेवीजी कन्या१, और श्रीमतीभप्पी- कुमरी का विवाह निदौन शहर में लाला गोकलचंदजी के साथ हुआ जिनके पुत्र लाला हंसराज जी हैं ॥

और लाला कृपारामजी के पुत्र लाला ग्याहरमल्ल—लाला बर्त-रामल्ल जो कि अमृतसर जैनसभा के मंत्री हैं। और हंसराज, मुकन्द राज, बाबूराम॥

यह भी सब पितानुकूल धर्म में रक्त हैं और माताजानदेवी जिसका लाला हेमराज जी के साथ विवाह हुआ था उस के एक जगूमलदेवी कन्या उत्पन्न हुई उसका विवाह सिहोल में हुआ॥

किन्तु जिसके गौरी दुर्गादेवी नाम की दो पुत्रियें कस्तीरचंद नामक एक पुत्र का जन्म हुआ। सो गौरी देवी का विवाह अमृतसर में लाला धनराज के साथ हुआ और दुर्गादेवी का विवाह सुजानपुर में किया गया॥

*पियमित्र यहां देखिये श्रीपूज्य महाराज कैसे विशाल कुल में उत्पन्न हुए और कैसी विस्तीर्ण कीर्ति युक्त हुए क्योंकि अमरसिंहजी गृहस्थाश्रममें सदाचारी भद्र अत्युत्तम प्रकृति धर्मात्मा पुरुष थे तथा प्रकृति से ही धार्मिकरूप थे ॥*

सो पूर्व पुन्योदय से सांसारिक पदार्थों से चित्त की निवृत्ति होने लगी दीक्षा की आशा उत्पन्न हुई ॥

सत्य है पुन्यवान् आत्मा (जीवों को) उदय में उदय होते हैं, जब श्री अमरसिंह जी को वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ तो अन्यदा समय जयपुर में व्याहरात के वास्ते गये थे तो वहां पर भी सेठ लोगों के साथ धर्म विषय वार्तायें हुईं ॥

फिर अपना निज आशय भी प्रगट कर दिया तब वे सेठ लोग अमर सिंह जी के आशय का सुन कर आश्चर्य युक्त हो गये ॥

पुनः यह कहने लगे कि हे अमर सिंह जी यदि आप दीक्षा धारण करनी चाहते हैं तो हम भी आप के साथ दीक्षा धारण करेंगे तब अमरसिंह जी ने कहा जैसी आप की इच्छा होवे ॥ वैसे ही करें किन्तु मेरी आशा तो अवश्य ही दीक्षा लेने की है ॥

जब अमरसिंह जी पुनः अमृतसर में आए तो दिनों दिन वैराग्य भाव बढने लगा श्रुति मुक्ति मार्ग में प्रवेश होगई जो कुछ संसारी पदार्थ थे वे अनित्यता दिखाने लगे मन निर्ममत्व में लग गया मुनि भाव धारणे को आकांक्षा बढ़ती गई श्री जिनवाणी ने कर्म वा जीव के स्वरूप को भिन्न २ कर के दिखा दिया ॥

तब फिर चित्त में यह निश्चय किया कि किसी मुनिराज के मिलने पर दीक्षा धारण करूगा ॥

फिर कितनेक समय के पश्चात् श्रीमान् परम पंडित श्रीस्वामी रामलाल जी महाराज श्री भगवान् वर्द्धमान स्वामी के ८५वें पट्टो परि विराजमान अपने अमृत रूपी व्याख्यानों के द्वारा इस प्रांत में मिथ्या पथ का नाश करते थे तब अमरसिंहजी ने चित्त में निश्चय किया कि मैं श्रीमहाराज का शिष्य होकर श्रीभगवत् का मार्ग प्रकाश करूं जिस करके बहुत से भव्य जीव मिथ्या पथ को त्याग कर सुगति के अधिकारी बनें क्योंकि मनुष्य जन्म पानेका यही सार है कि धर्म के द्वारा परोपकार करना तब अमरसिंह जी ने अपनी दुकान पर पाच पुरुष गुमाश्ते (दास) करके बठ लाये सब काम उनको समर्प्पण कर दिया घर का भी नियम पूर्वक कार्य उन को ही कहा गया जिनक नाम यह हैं ॥

लाला घसीटामल्ल १, मइयामल्ल २, सोहनलाल ३, घनैया मल्ल ४, कोटू मल क्षत्री ५, जब आप सब काम कर चुके फिर यथा योग्य धन सम्बन्धियों को भी देकर दीक्षा के वास्ते अमृतसर से चल पडे परंतु उस काल में परम पडित श्री स्वामी रामलाल जी महाराज दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) में विराजमान थे तब श्री अमरसिंहजी दिल्ली को ही चले ध्यान रहे उस समय में रेल गाडी का प्रचार न होने के कारण से बहुधा लोग इन्द्रप्रस्थ में जाने वाले सुनामादि नामक नगरों से होते हुए दिल्ली में पहुंचते थे ॥

तब श्री अमरसिंह जी सुनाम में गये पुनः श्रावक लोगों के साथ धर्म सम्बन्धी वार्तालाप हुआ तो दो पुरुष दीक्षा के लिये भव्य भी उद्यत हो गये जिन के नाम यह हैं कि—रामरत्न जी १, जयंति दास जी २, तब श्री अमरसिंह जी दोनों को साथ ले कर दिल्ली में पधारे ॥

सत्य है पुण्यात्मा आप तरते हैं भव्य को तार देते हैं इसी वास्ते ही शक्रस्तव में भगवत् की स्तुति समय यह सूत्र आया है यथा—

(तिण्णाणं तारयाणं) अर्थात भगवन् आप तरते हैं भव्य भव्य जीवों को तारते हैं ॥

जब श्री अमर सिंह जी रामरत्न जी जयंति दास जी इन्द्र प्रस्थमें पहुंचे पुनः श्री राम लाल जी महाराज जी के आनंद पूर्वक दर्शन किये श्री महाराज जी की व्याख्यान रूपी अमृत धारा से हृदय रूपी कमल पवित्र किया पुनः निज भाशय को चरण कमलों में निवेदन किया ॥

तब श्री राम लाल जी महाराज ने संयम का पालन अति कठिन विस्तार पूर्वक कह सुनाया तब श्री अमरसिंह जी ने राम रत्न जी ने और जयंति दास जी ने सहर्ष मुनि वृत्ति स्वीकार की। क्योंकि सत्य है शूरवीर के लिये कौनसी बात कठिन है ॥

५८ फिर दिल्ली वाले श्रावकों ने १८९८ वें विक्रमाब्दे और वैशाख कृष्ण द्वितीया के दिन दीक्षा महोत्सव स्थापितकिया तब अमर सिंह जी ने रामरत्न जी ने जयंतिदास जी ने श्रीपंडित राम लाल जी महाराज के पास उक्त ग्राम में दीक्षा धारण करी अर्थात सामायिक चारित्र ग्रहण किया तत्पश्चात् * पञ्चमहाव्रतपञ्चम रात्रि भोजन त्याग रूप छदोपस्थापनी नामक चारित्र धारण किया ॥

---

* पांच महा व्रतों का स्वरूप दश्वै श्री दशवैकालिक सूत्र श्री आचारांग सूत्र श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र इत्यादि सूत्रों में मुनि गुण को कथन किये गये हैं।

और सर्व मुनि गुण युक्त होते हुए श्रीपंडित जी महाराजके पास श्रुता ध्ययन करने लगे ॥

क्योंकि श्रीअमरसिंह जी महाराज सप्त गुरु भ्रातृथे जैसे कि-श्री दौलत राम जी महाराज १, श्री लोटनदास जी महाराज २, श्री रामरत्न जी महाराज ३, श्री पूज्य अमरसिंह जी महाराज ४, श्री जयंतिदास जी महाराज५, श्री देवी चन्द जी महाराज ६, श्री धनीराम जी महाराज ७, ये सर्व यथा विधि श्रुताध्ययन करते हुओं ने विक्रमाब्द १८९८वें का चतुर्मास दिल्ली में किया ॥

किन्तु शोक से लिखना पड़ता है कि काल की कैसी विचित्र गति है कि श्री रामलाल जी महाराज जो कि पूर्ण विद्वान् थे षट् मास के अतरगत ही स्वर्ग वास हो गये तब श्री सघ में महान् शोक उत्पन्न हो गया एक महान् जैन संघ में अमूल्य रत्न की हानी हो गई ॥

परन्तु जब कालके सन्मुख तीर्थकरादि भी स्थिर न रहे तो भला अन्य पुरुष की तो क्या ही बात है, इत्यादि विचारों से शोक दूर किया गया अर्थात् उदासी भाव दूर होगया ॥

श्री अमरसिंह जी महाराज चतुर्मास के पश्चात् ग्राम नगरों में जैन धर्म का प्रकाश करते हुओं ने १८९९ वें का चतुर्मास सुनाम नगर में किया उस काल में * स्तोक महान् अर्थ सूचक शास्त्रों की हस्वता प्रगट करने वाला सूक्ष्म ज्ञान सीखा सूत्र भी उत्तम सयोग होने पर बहुत से अध्ययन किये ॥

अपितु इस द्वितीय चतुर्मास में ही श्री पूज्य जी महाराज शास्त्रज्ञ पूर्ण हो गये जिनके दर्शन करके लोग यही कहते थे कि यह

---

* स्तोक शब्द का अपभ्रंश थोकडा शब्द बना हुआ है क्योंकि थोकडों में महान् सूत्रों का ह्रस्व ज्ञान भरा हुआ है तथा थोक शब्द समूह का वाची होने से भी ठीक है क्योंकि थोकडों में सूत्रों का थोक ज्ञान है ॥

साधु होनहार हैं जैन धर्म के परमोद्योतक होवेंगे । सत्य है लोग माया क्षीण ही फलीभूत हो गई ।

पुनः नामा परियाला छींटावाला इत्यादि नगरों में धर्मोपदेश देते हुओं ने १९०० का चतुर्मास अम्बाला नगर में किया नगर में धर्मो द्योत बहुत ही हुआ क्योंकि श्री अमरसिंह जी महाराज धर्मनेता थे सदैव ही धर्म वृद्धि में कटि बद्ध थे पुनः धर्म के पूर्ण प्रकार से पर चारक थे चतुर्मास के अनंतर समूह, खरड़ रोपड़ माछीवाड़ा, लुधियाना जगरांवा भूदू बड़ जीरा फीरोजपुर इत्यादि नगरों में सत्य धर्मोपदेश देते हुए जीवों को भवसागर से तारते हुए बहुत से श्रावकों की अति विज्ञप्ति होने से १९०१ का चतुर्मास फरीदकोट में किया सो श्री महाराज ने जंगल देश के लोगों पर महान् परोपकार किया बहुत से भव्यजनों के अमृत रूप जिन वाणी से अन्तःकरण पवित्र किये क्योंकि श्री महाराज में जिन वाणी के उच्चारण की महान् शक्तियी और शरीर की कान्ति ऐसी थी कि यावज्जन दर्शन करके ही विवाह की आशा त्याग कर दीक्षा के लिये उद्यत होते थे व्याख्यान की भी शैली अकथनीय थी ॥

श्री महाराज ने इस चतुर्मास में श्री उववाई सूत्रानुसार बहुत ही तप किया तथा सूत्रों का उपधान नाम आदि (मासक्षमादि) भी तप किया चतुर्मास के पश्चात ग्रामानु ग्राम विहार करते हुए लोगों के चित्त के संशय नाश करते हुए श्री महाराज अमृतसर में पधारे तब नगर में आनन्द हो गया बहुत से लोग परमतवाले दर्शन करने का आते थे पुनः दर्शन करके आनंदित होते थे क्योंकि श्री महाराज पूर्व अवस्था में अमृतसर में एक सुप्रसिद्ध जौहरियों में से नामांकित जौहरी थे ॥

इस काल में ही अमृतसर में श्रीस्वामी गणावच्छेदक जी महाराज

का एक*शिष्य बूटे राय जी नामक विराजमान था तिसने वहां पर तप करना प्रारम्भ कर रक्खा था ॥

किन्तु उपवासादि तप करते हुए परिणामों की शिथिलता वढ़ गई थी ॥

अपितु श्री पुज्य महाराज बूटेरायजी के मन के भाव न जानते हुए तप कर्म में सहायक हुए किन्तु पाप कर्म गुप्त कब रह सक्ता है इस कहावत् के अनुसार अन्यदा समय बूटेराय जी श्री महाराज जी से कहने लगे कि हे अमरसिंह जी आजकल तो साधु पथ का ही व्यवच्छेद है तब श्री महाराज ने कहा कि आप अपने आप को क्या समझते हो ॥

तब बूटेरायजी ने कहाकि मैं तो अपने आपको श्रावक मानता हूं ॥

श्री महाराज ! बूटेराय जी भगवती सूत्र में लिखा है कि पञ्चम काल के अंत समय पर्य्यन्त भी चतुर् श्रीसंघ रहेगा, आप अपने मन को मिथ्यात में क्यों प्रवेश कराते हैं तथा चारित्रादि को भी देखीये ॥

बूटेराय ! † मैं तो श्रावक हूं ॥

---

* यह वही बूटेराय जी हैं जो श्वेताम्बर मत को छोड़ कर पीताम्बर शाखा में गये थे जिनका नामबुद्धि विजय रक्खा गया था किन्तु यह संस्कृत वा हिंदी भाषा भी शुद्ध नहीं पढ़े हुए थे देखो इनकी बनाई हुई मुखपत्ती चरचा नामक पुस्तक अपितु यह एक परिग्रह धारी पीताम्बरी के शिष्य हुए थे ॥

† मुखपत्ती चरचानामक पुस्तक में बूटेरायजी लिखते हैं कि—अभी जैन सिद्धान्त के कहे मुजब कोई साधु हमारे देखने में नहीं आया और हमारे में भी तिस मूजब साधु पणा नहीं हैं तिस्से हम भी साधु नहीं हैं इति वचनात् इसी प्रकार चतुर्थ स्तुति शकोद्धार के प्रस्तावना पृष्ठ ३१ में भी लिखा है जो राजेंद्र विजय धरणेन्द्र विजय संवेगी का बनाया हुआ है ॥

तब श्री अमरसिंह जी महाराज ने कृपा करी कि सूत्र में लिखा है कि (गिहिणोवे आवडियं) अर्थात् साधु गृहस्थ की वैयावृत्य करे तो अनाचीर्ण है इसी वास्ते मुनि गृहस्थ की वैयावृत्य न करे ॥

सो मैं तो सूत्रानुसार काम करूंगा तब श्री पूज्य जी महाराज ने लाला सोहनलाल, लाला मोहनलाल इत्यादि सुज्ञ श्रावकों को सर्व वृत्तान्त कह सुनाया तब श्रावकगणने भी बूटेराय जी को बहुत सी हित शिक्षायें दीं किन्तु बूटेराय जी ने एक भी न मानी तब श्रावक वर्ग ने भी जान लिया कि इस बूटेराय जी का चित्त अस्थिर हो गया है ॥

(सत्य है मोहनी कर्म किस २ को नहीं न चाता) अब यह पतित अवश्यमेव ही हो जावेगा ॥

सो वैसे ही होगया तब फिर लोगों ने श्री महाराज को चतुर्मास की अत्यन्त ही विज्ञप्तिकरी तब श्री पूज्य महाराज जी ने १९२ का चतुर्मास अमृतसर में ही किया किन्तु इस चौमास में श्री पूज्य जी महाराज श्रुतविद्या ही पूर्व प्रकार से अध्ययन करते रहे और इस चौमास में परमत वालों को बहुतसा लाभ हुआ चौमास के पश्चात् स्यालकोट के भाईयों की बहुत ही विज्ञप्ति होने से श्री महाराज ने स्यालकोट को ओर विहार करदिया फिर पसरूर गुजरांवाला नसरुल्ला जम्मू इत्यादि नगरों में धर्मोपदेश देते हुए स्याद्वाद् रूपी मत से मिथ्यात्व का नाश करते हुओं ने सम्वत १९०३ का चौमासा स्यालकोट में ही करदिया जिस चौमासे में लाला *सौदागरमल्ल जी जोकि बड़े शास्त्रज्ञ थे तिन से बहुतसा ज्ञान और भी प्राप्त किया ॥

सो चतुर्मास अत्यानंद से पूर्ण हो गया किन्तु इस चौमासे में लाला मुस्ताकराय जी को अति तीक्ष्ण वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया ॥

---

* यह वही लाला सौदागरमल्लजी हैं जिन्हों ने एक बार बहुत से शास्त्रों के प्रमाण देकर बूटेराय जी को समझाया था जब बूटेराय जी ने एक भी शास्त्रोक्त प्रमाण न स्वीकार किया तब सौदागरमल्लजी

सत्य है ऐसे ही मिथ्या हठों से जिन मार्ग की यह दशा हो गई है अर्थात् नूतन शाखें उत्पन्न हो गई हैं ॥

लाला मुस्ताकराय जी लाला हीरालाल खंड वाले की पुत्री ज्वालादेवी के सगे भाई थे ॥

चौमासे के पश्चात् श्री महाराज ने इन को भी दीक्षित किया यह *महात्मा जी श्री महाराज के ज्येष्ट शिष्य हुए फिर श्री पूज्यजी महाराज ग्रामानुग्राम विचरते हुए भव्य जीवों को सत्योपदेश देते हुए लाहौर (लवपुर) में पधारे फिर कुशपुर ( कसूर ) में फिर फिरोज़पुर इत्यादि नगरों में विचरके फिर फरीदकोट वाले भाईयों की विज्ञप्तिको स्वीकार करके १९०४ का चौमासा फरीदकोट में ही करदिया पूर्ववत् ही धर्मोद्योत हुआ फिर चौमासे के पश्चात् अनुक्रम विचर के १९०५ का चौमास मालेरकोटले में किया सो मालेरकोटले में धर्मोद्योत बहुत ही हुआ ज्ञान की वा तपादि की वृद्धि अतीव हुई क्योंकि उस काल में मालेरकोटले में सूक्ष्म ज्ञान का प्रचार था कई भ्रातृगण शास्त्रज्ञ भी थे अपितु घरों की संख्या भी महत् थी, किन्तु अब भी अन्य नगरों की अपेक्षा महत् ही है ॥

चौमासे के पश्चात् ग्राम नगरों में विचरते हुए धर्मोपदेश देते हुए अन्यदा समय श्री महाराज नाभानगर के समीप ही एक छींटा वाल नामक उप नगर वसता है तिस नगर में पधारे जब रात्री को

---

ने रामनगर के श्रावकों से कहा कि यह बूटेराय जी तो संयम से शिथिल हो गया हैं तुम क्यों पवित्र मार्ग से पतित होते हो तब रामनगर के भाइयों ने कहा कि यदि बूटेराय जी वनस्पत्ति विक्रिय भी करने लगजावे तब भी हम तो गुरु करके ही मानेंगे ॥

* श्री स्वामी मुस्ताकराय जी महाराज के शिष्य स्वामी हीरालाल जी महाराज हुए तिन के शिष्य श्री स्वामी तपस्वी गोविंदराम जी महाराज विराजमान हैं ॥

बहुत से श्रावक जन एकत्र हुए तो श्री महाराज जी एक जिन स्तुति वा मनोहर उपदेशक पद कहने लगे तो एक अमरचन्द्र नामक गृहस्थस्वरों का वेत्ता उपस्थित था जिस ने श्री महाराज के स्वर को सुन के कहा कि श्री महाराज का ऐसा *स्वर है कि —

इन का १०० शिष्य का परिवार होवेगा सत्य है स्वरवेत्ता का कथन शीघ्र ही फलो भूत हो गया फिर श्री पूज्य श्री महाराज अन्यत्र विहार कर गये किन्तु बहुत से भाइयों की विज्ञप्ति होने से १९०१ का चातुर्मास लुधियाना में किया ॥

धर्मोद्योत बहुत ही हुआ तथा सम्यक्त्व में लोग दृढ़ हो गये मिथ्या मार्ग का नाश करते हुए अनुमान कार्तिक मास में ही एक फिरोज़पुर नामक नगर से पत्र भाईयों का लिखा हुआ आया जिस में लिखा था कि—श्री योगराज जी के गच्छ के दो साधुओं का चतुर्मास अर्थात् श्री स्वामी गंगाराम जी महाराज और श्री स्वामी हरयाल जी महाराज जिस में स्वामी हरयालजी महाराज अति रोग पीड़ित हो रहे हैं इसलिये श्री महाराजजी फिरोज़पुर की ओर शीघ्र ही विहार करें ॥

इस पत्र के समाचार को सुनते ही श्री पूज्य श्री महाराज ने लुधियाना से फिरोज़पुर की ओर विहार कर दिया अनुक्रमता से चलते हुए फिरोज़पुर में जब पधार गये तब श्रावक लोग परमानंद हुए किन्तु स्वामी हरयाल जी महाराज रोग से अति पीड़ित हो रहे थे तब श्री महाराजजी ने क्षेत्र कालभाव को देख कर स्वामी हरयाल

---

* सूत्र श्री स्थानांग जी सूत्र अनुयोग द्वार जी में एक स्वर मंडल कथन कियागया है जिस मंडल में मुख्यतया करके सप्त स्वर लिखे हैं जैसे कि—षड्जम् १ ऋषभ २ गंधार ३ मध्यम ४ पञ्चम ५ धैवत ६ निषाद ७ इन सप्त स्वरों का फल भी उक्त सूत्रों में ही विस्तार पूर्वक कथन किया गया है ॥

जी को अनशन करवाया सो वह अल्पकाल में ही देवगत हो गये फिर श्री गंगाराम जी महाराज जब एकले ही रहगये तो फिर श्री पूज्य जी महाराज ने विचार किया—यदि एक शिष्य नया हो जावे तो यह श्री गगा राम जी साधु दो हो जायेंगे तब इन के संयम का निर्वाह भी सुख पूर्वक हो जावेगा ॥

सत्य है पुण्यवान् की आशा शीघ्र ही पूर्ण हो जाती है तब उस काल में ही एक ओसवाल जगल देश के नौरग्राम के वसने वाले श्रावक जीवनरामजी दीक्षा लेने वास्ते फिरोजपुर में स्वतः ही आगये तब श्री पूज्य जी महाराज ने *जीवनराम जी को भली प्रकार से दृढ करके और फिरोजपुर में ही दीक्षित करके स्वामी गंगारामजी को समर्प्पण करदिये ॥

धन्य हैं ऐसे परोपकारी महात्मा को फिर श्री पूज्य जी महाराज जी अन्यत्र विहार करगये ॥

और ग्राम २ में जैनधर्म का प्रकाश करते हुए अनुक्रमता से दिल्ली नगर में पधारे फिर बहुत से लोगों की विज्ञप्ति होने के कारण १९०७ का चौमास इन्द्रप्रस्थ में ही करदिया चतुर्मास में भव्य जीवों को अमृतरूपी सर्वज्ञोक्त ज्ञान पिलाया और श्रावक लोगों ने भी जैनधर्म की अनेक प्रकार से प्रभावनायें करीं क्योंकि एक तो श्री पूज्यजी महाराज की दिल्ली में दीक्षा ही हुई थी, द्वितीय श्री महाराज परम पंडित थे इस कारण से लोग नाना प्रकार का उत्साह करते थे ॥

---

*यह वही श्रीजीवनराम जी महाराज हैं जिनके शिष्य आत्माराम जी हुए थे फिर श्री जीवनराम जी महाराज ने आत्माराम को अयोग्य ज्ञात करके स्वःगच्छ से वाह्य किया था क्योंकि आत्माराम जी का विशेष वर्णन आगे लिखा जायगा, और जिनके गच्छ के पूज्य श्री चद्र जी विद्यमान है ॥

फिर श्री महाराज ने चतुर्मास के पश्चात् लोगों के परोपकार के वास्ते जयपुर की ओर विहार किया ॥

किन्तु स्वामी मुसद्दीराय जी महाराज वा स्वामी * गुलाबराय जी महाराज की भी यही विज्ञप्ति थी तब श्री महाराज अलवर में पधारे और जिन वाणी का प्रकाश किया तब बहुत से भव्यजनों को वैराग्य भाव उत्पन्न होगया जिस का फल आगे लिखेंगे ॥

अन्यदा समय श्रीपूज्यजी महाराजजी ने जब अलवर से विहार किया फिर अनुक्रमसे जब जयपुर में पधार गये तब जयपुर में आनन्द उत्पन्न होगया चारों ओर श्रीजैनेन्द्रदेवके नामका नाद होने लगा—प्रत्यक्षीलाघु नामकी सभासे लोकपुकारने लगे क्योंकि पूर्वकाल में श्रीमान् आचार्य मलूकचन्द्र जी महाराज ने जयपुर में महान् धर्मोद्योत किया था ॥

फिर चारों ओर से चौमासे की विज्ञप्ति होने लगी तब श्री महाराज जी ने १९०८ का चतुर्मास जयपुर का ही स्वीकार करलिया फिर जयपुरके समीप २ विचरके चौमासे के वास्ते जब जयपुरमें पधारे तब ही विलासराय जी दीक्षा लेने वास्ते जयपुर में ही आगये फिर श्री महाराज ने विलासराय जी को दीक्षित करके निज शिष्य बनाया ॥

---

* यह श्री गुलाबराय जी महाराज भी श्री पूज्य जी महाराज जी के ही शिष्य थे किन्तु इन की दीक्षा अनुमान १९०४ वा १९०५ की है अपितु पाठकगण क्षमा करें बहुत से दीक्षापत्र मुझे उपलब्ध नहीं हुए हैं इसलिये मैं अनुमान शब्द ग्रहण करता हूं किन्तु यह महात्मा जी फरीदकोट के वासी एक सुप्रसिद्ध ओसवाल थे ॥

† यह वही श्री स्वामी विलासराय जी महाराज हैं जिन्हों ने १९२८ में विरधचन्द्रादि भेषधारियों का अनिष्टाचरण को प्रकट करके श्री पूज्य जी महाराज से विज्ञप्ति की थी कि इस दुर्गन्ध को क्यों गुप्त करते हैं तब श्री पूज्य महाराज जी ने विरधचन्द्रादि भेषधारियों को गच्छ से बाहर कर दिया था जिन का स्वरूप आगे लिखेंगे ॥

किन्तु यह श्री स्वामी विलासराय जी महाराज बहुत ही दीर्घ दर्शी शान्ति रूप थे और इनका जन्म मालेरकोटला नामक नगर का था दुकान लुधियाना नामक नगर में करते थे ॥

जब चौमास अत्यानंद से व्यतीत होने लगा तब अकस्मात् अलवर से रामबक्ष जी स्वः पत्नी युक्त दीक्षा के वास्ते जयपुर में ही उपस्थित हुए तब श्री पूज्य जी महाराज ने रामबक्ष जी सुखदेव जी को जयपुर के चौमास में ही दीक्षित किया ॥

और तिनकी पत्नी भी आर्याजी के पास दीक्षित हो गई ॥

किन्तु यह महात्मा जी—जैन धर्म में सूर्यवत् प्रकाश करने वाले हुए हैं और पंजाब देश में श्री स्वामी परम पंडित *रामबक्ष जी महाराज ऐसे नाम से सुप्रसिद्ध हुए हैं ॥

क्योंकि स्वामी जी महाराज ज्ञानाकर थे स्वामी जी का जन्म १८८३ जन्म लग्न में इस प्रकार से ग्रह स्थित हैं ।

जैसेकि—विक्रमाब्द १८८३ आश्विन मास शुक्ल पक्षे १५ रवि वासरे मृग शीर्ष नक्षेत्र ब्रह्मनाम योगे कोलव करणे जन्म चक्रम् ॥

---
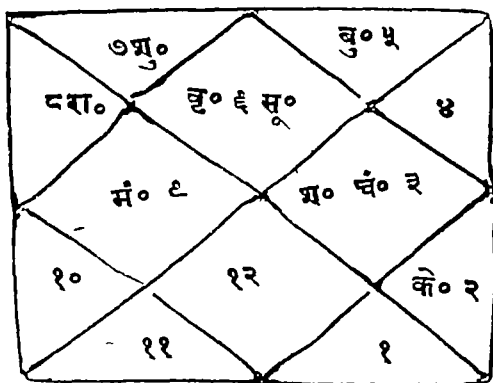
* श्री पूज्य रामबक्ष जी महाराज जी क पांच शिष्य हुए हैं श्री वृद्ध शिवधाल जी १, विशनचन्दजी जो कि संवेगी हो गये थे २।

और यह महात्मा जी परम त्यागी बैरागी थे ॥

सो जयपुर के चौमास में धर्मोद्योत बहुत ही हुआ तत्पश्चात् श्री पूज्य जी महाराज चतुर्मास के पीछे मरु ( मारवाड़ ) देश में विचरने लगे सो जोधपुरादि नगरों में विचरते हुए बीकानेर ( विक्रमपुर ) में पधारे तब नगर में धर्मोत्साह बहुत ही हुआ। सैंकड़ों नर नारी दर्शन करके अत्यानन्द होते थे। तथा भाषा पना संशय निर्वृत करते थे ॥

जब श्री महाराज व्याख्यान करते थे तब सम्यगत संशयों से निर्वृत होकर सहर्ष चौमास की विज्ञप्ति करते थे ॥

जब लोगों से बहुत ही विज्ञप्ति करी तब श्री पूज्य श्री महाराज जी ने सम्वत् १९ ९ का चौमास बीकानेर में ही कर दिया धर्म की प्रभावना भी बहुत हुई ॥

*किन्तु चतुर्मास के अंतर गत ही एक दिन की वार्ता है।* कि श्रीमान् कोठारी रावतमल्ल जी श्री महाराज से पूछने लगे कि— कृपा नाथ जैन मत की जो तीन शाखायें वर्तमान काल में हो रही हैं इन में से सत्य प्रतिपादक तथा सुधर्म्मा स्वामी की अव्यवच्छिन्न परंपरा से कौनसी शाखा चली आई है ॥

तब श्री महाराज ने शान्ति भाव से यह उत्तर दिया कि—हे श्रावक जी श्री भाष्य प्रणीत सूत्रों में तत्त्व अथवा मुनि गुण कथन किये

---

श्रीतपस्वी गोप्यपति राय जी महाराज जिनके शिष्य श्री स्वामी हरनाम दास जी महाराज हुए जो कि रोपड़ के वासी एक सुप्रसिद्ध ओसवाल थे जिन के शिष्य श्री स्वामी मयाराम जी महाराज श्री स्वामी जवाहर लाल जी महाराज हुए ३। श्री स्वामी वृत्तेश मल्ल जी महाराज ४। और श्री स्वामी पंडित धर्मचन्द्र जी महाराज जिनके शिष्य श्री स्वामी शिवदयाल जी महाराज और श्री आचार्य वर्य्य सोहन लाल जी महाराज हुए जो कि वर्तमान समय में सूर्य्यवत् जैन धर्म का प्रकाश कर रहे हैं जिन का स्वरूप आगे लिखेंगे ॥

हैं सो जो उन तत्त्वों का वेत्ता मुनि गुण धारण करने वाला पुरुष है अर्थात् जो जीव सम्यक् प्रकार से तत्त्वों का ज्ञाता हो करके मुनि पद धारण करता है उसी ही जीव को सूत्र कर्ता बुद्ध पुत्र के नाम से लिखते हैं ॥

तब श्रीमान् श्रावक जी ने कहा कि हे महाराज जी आप का कथन सत्य है अपितु जो कुछ आपने ह्रस्व वाक् से महान् अर्थ सूचक उत्तर दिया है मैं इस को शिरो धारण करता हु किन्तु इस कथन को सत्यता पूर्वक आपके चरण कमलों में निवेदन करता हुं ॥

स्वामिन् जो दिगंबरी लोग हैं वे एकान्त नय के स्थापक होने से अनेकान्त मत में अयोग्य होते हुए स्व आत्मा को स्वयमेव ही तिरस्कार करने वाले हो गये हैं ॥

और जो श्वेताम्बर मत से भिन्न हो कर पीताम्बर कहलाते हुए तपागच्छादि धारी लोग हैं वे लोग भी अनेकान्त मत से पृथक् हो हैं ॥

क्योंकि—वीर शासन में एक श्वेत वस्त्र धारण करने की आज्ञा है, किन्तु यह लोग उक्त आज्ञा को न मानते हुए मनमाने पीतादि वस्त्र धारण करते हैं ॥

और यह लोग वीतराग भाषित दया मार्ग से पृथक् हो कर षट्काय वध रूप मदिरोपदेष्टा हो गये हैं और श्री नदी जी सूत्र में यह कथन है कि जो श्रुत चतुर्दश पूर्वधारी का कथन किया हुआ है वा दश पूर्व धारी का कथन किया हुआ है वे सम्यक् श्रुत है और वे प्रमाण करने योग्य है ऐसे कथन होते हुए भी यह लोग उक्त कथन को सादर पूर्वक न देखते हुए जो मताध पुरुषों के रचे हुए ग्रंथ हैं जिन में सावद्य निर्वद्य का कुछ भी विवेक नहीं किया गया है उन ग्रथों के यह लोग परमोप देशक हो रहे हें तथा शास्त्रोक्त तीर्थ श्रीचतुर्सघरूप को त्याग करके बाह्यः पाषाणरूप तीर्थों के स्पर्श करने से अपना कल्याण समझते हैं अजीव में जीव सज्ञा धारण

करते हुए मुख से मुखपत्ति उतार करके हाथ में रखते हैं तथा मार्ग को न पालन करते हुए पुनः २ असत्योपदेश देते हैं ॥

इत्यादि कारणों से यह लोग भी अनेकान्त मत के अनधिकारी हैं सो सम्यक् दृष्टि से देखा जाय तो वीर शासन में शुद्ध मार्गोपदेष्टा श्वेताम्बर साधु मार्गी जैन ही हैं अब श्रीमान् श्रावक जी ऐसे कथन कर चुके तब श्री महाराज ने कृपाकरि कि—हे श्रावक जी यह कथन आप का अत्यन्त ही निष्पक्षता का सूचक है तब फिर श्रावक जी बोले कि हे स्वामिन् श्रीविवाह प्रज्ञप्ति श्री ज्ञाता धर्म कथांग इत्यादि सूत्रों में तप संयमादि नियमों को यात्रा बतलाया है किन्तु यह लोग उक्त सूत्रोक्त पाठ होते हुए भी ध्यानपूर्वक नहीं देखते हैं इसी ही कारण से यह लोग सम्यक् ज्ञान से पराङमुख हैं ॥

तब श्री महाराज ने कृपा करके श्रावक जी इन्हीं कारणों से आत्मा ने अनंत जन्म मरण किये हैं फिर और भी श्रावक जी ने प्रश्न पूछे सो स्वामी जी ने सूत्रानुसार युक्ति पूर्वक उसे उत्तर दिये कि श्रावक जी परमानंद हो गये और श्री महाराज की परम कीर्त्ति करने लगे सो आनंद के साथ १९०९ का चौमासा पूर्ण होने के पश्चात् बूढ़ी छोटे वाले श्री स्वामी फकीरचंद जी महाराज मिले तिनके साथ भी धर्म वार्त्तायें बहुत होती रहीं ॥

तथा नेत्र सूत्र जो वाचन नहीं करे थे वह सूत्र भी श्री महाराज जी ने स्वामी फकीरचंद जी से पढ़े स्वामी फकीरचंद जी श्री पूज्य महाराज जी की बुद्धि या याग मुद्रा का देख कर अति आनंद होते थे और आपवहन प्रम पूर्वक कराते थे ॥

विद्या अध्ययन करने के पश्चात फिर श्री महाराज बीकानेर में ही श्री स्वामी हुकमीचन्द्र जी महाराज को मिले ना उन के साथ प्रेम पूर्वक वार्त्ता हुई।

अपितु जो श्रीमहाराजजी के दर्शन करता था वह अपरतमय हो

परमानंद हो जाता था सो अनुक्रम से श्रीपूज्यजी महाराज विहार करते हुए वा वहुतसे*मुनियोंको मिलते हुए पुनःदिल्लीमें विराजमान होगये।

लोगों को परम उत्साह उत्पन्न हो गया पुनः चतुर् मास करने की विज्ञप्ति होने लगी तब श्री महाराज ने ग्रीष्म ऋतुको ज्ञात करके १९१० का चौमास दिल्ली में हो कर दिया पुनः चतुर्मास के पूर्व आषाड़ मास में धर्म के द्योतक श्री मोतीराम जी, रत्नचंद्रजी, मोहनलाल जी, खेताराम जी, यह चार भाई लुधियाना से दीक्षा के वास्ते दिल्ली में आगये तो श्री पूज्यजी महाराज ने इनको दृढ़ करके आषाड़ कृष्णा १०मी, को दिल्ली में ही दीक्षित किया पुनः स्व शिष्य वनाये जिस में श्री पूज्यजी के पट्टधारी श्री पूज्य रामवक्ष जी महाराज जी के पश्चात् श्री संघने श्री स्वामी † मोतीरामजी महाराज जी को १९३९ में मालेर कोटले शहर में आचार्य पद दिया अपितु यह स्वामी जी महाराज महान् शान्ति मुद्राके धारी हुए हैं।

---

* जिन२ मुनियों को मिले थे उन के नाम सर्व मेरे को उपलब्ध नहीं हुए हैं इस लिये जीवन चरित्र में सर्व नाम नहीं लिखे गये हैं नाही मरुस्थल के ग्राम नगरों के पूरे २ नाम मिले हैं नाहीं मालवे के।

† श्री पूज्य मोतीरामजी महाराज का जन्म लुधियाना के ज़िले में एक वहलोलपुर नामक नगर वसता है तिस में विक्रमाब्द १८८० आषाड़ मास में हुआ था ज्ञाति के कोली क्षत्री दीक्षा १९१०दिल्ली में। आचार्य पद १९३९ मालेरकोटलेमें और स्वर्गवाल१९५८आश्विनमास, लुधियाने में, अपितु श्रीमहाराज के पांच शिष्य हुए,जैसे कि श्रीस्वामी गंगारामजी महाराज १ श्री स्वामी गणावछेदिक श्री गणपति राय जी महाराज २ श्री चंदजी जो कि पूर्व पापोदय से संयमसे पतित होगये ३ श्री तपस्वी हर्षचन्द जी ४ श्री तपस्वी हीरालाल जी महाराज किन्तु श्री गणावछेदिक जी महाराजजी के शिष्य श्री स्वामी जयराम जी महाराज तस्य शिष्य श्री स्वामी शालिग्राम जी महाराज तस्य शिष्य इस पुस्तक के लिखने वाला उपाध्याय आत्माराम नामक मैं हूं।

इनका पूर्ण स्वरूप (मेरा बनाया हुआ) भी पूज्य मोतीराम जी महाराज का जीवन चरित्र नामक पुस्तक से देखो तात्पर्य यह है कि दिल्ली में १९१० के चतुर्मास में बहुत ही आनंद हुआ ॥

चौमासे के पश्चात् ग्राम नगरों में विहार करते हुए तथा परोपकार करते हुए नाभा नगरके पास भींटावाला नामक उपनगर में पधारे तो वहां स्वामी * बालक रामजी महाराज को १९११ वैशाख मास में दीक्षित किया दीक्षा के पीछे श्री महाराज जय विजय करते हुए अम्बाला (अम्बकालय) नामक नगर में पधारे धर्मोद्योत अतीव हुआ ॥

और परमत वाले लोग भी श्री महाराज जी के दर्शन करने को बहुत से आते थे पुनः स्या स्वा संशय निवृत्त करते थे तब भाईयों की चौमासा के वास्ते बहुतही विज्ञप्ति होने लगी तो श्री पूज्य महाराज ने १९११ का चौमास अंबाले नगर में ही कर लिया ॥

किन्तु चौमासा के अंतर गत ही श्री स्वामी हीरालाल जी महाराज श्री स्वामी मानकचन्द्र जी महाराज की दीक्षा करी और उस काल में श्री स्वामी † रूप चन्द्र जी महाराज श्रीमहाराज जी को परम

---

* स्वामी बालक राम जी महाराज जी के दो शिष्य हुए श्री स्वामी लालचंद्र जी महाराज। श्री स्वामी प्रेम सुख जी महाराज स्वामी लालचन्द्र जी महाराज के शिष्य पूर्ण चन्द्रादि साधु हैं । श्री प्रेम सुख जी महाराज के शिष्य श्री स्वामी बादी लाल जी महाराज हैं। तिन के शिष्य स्वामी हरिश्चन्द्र जी महाराज हैं इत्यादि॥

† स्वामि रूप चन्द्र जी महाराज की दीक्षा अनुमान १९११ के चौमासे से पूर्व की है यह स्वामी जी दिल्ली के निवासी एक सुप्रसिद्ध ओसवाल जाति के जौहरी थे इनके शिष्य श्री स्वामि तपस्वी केशरी सिंह जी महाराज वा स्वामी वधावाराम जी हैं तथा स्वामी जी के शिष्य पूर्व पापोदय से । मतामनगाय तुलसीराम हुक्म चन्द्र इत्यादि मुनि नंदमन वनिर ३।८ नगानदउ में चले गये थ जिनका वृतान्त यथा स्थान में लिखा जायगा॥

वैयावृत्य करते थे और श्री महाराज जी साधुओं को विधि पूर्वक श्रुताध्ययन कराते थे ॥

क्योंकि सूत्रस्थानांग जी के पाञ्चवें स्थान के तृतीयोद्देशक में लिखा है कि—यदुक्तम्ः—

**पंचहिठाणेहिं सुत्तं वाएज्जा तंजहा सग्गहठयाए उवग्गहठयाय णिज्जरठियाय सुत्तेवामे पज्जवयाते भविस्संति सुत्तस्सवा अवोछिन्न थयठयाते ॥**

अस्यार्थः—पच कारणों से गुरु शिष्य को सूत्र पढ़ावे । प्रथम तो मैंने इस को सग्रहा है द्वितीय संयम में यह स्थिर हो जायगा तो गच्छ में आधार भूत होवेगा तृतीय निर्जरार्थे चतुर्थ मेरा श्रुत अत्यन्त निर्मल होजायगा पञ्चम् श्रुत की शैली अव्यवछेदनार्थे इन कारणों से आचार्य्य श्रुताध्ययन मुनियों को करावे ॥

सो श्री महाराज विधि पूर्वक मुनियों को श्रुताध्ययन कराते थे अर्थात् इस चौमासे में बहुत से मुनियों को श्रुत विद्या का लाभ हुआ ।

सो चौमासे के पश्चात् अनुक्रम से विहार करते हुए तथा जैन मत का स्थान २ में प्रचार करते हुए मालेरकोटले वाले भाईयों की पुनः अत्यन्त विज्ञप्ति के प्रयोग से १९१२ का चौमास मालेरकोटले नगर में ही कर दिया सो पूर्ववत् धर्मोद्योत हुआ अपितु भ्रातृगणों ने श्री महाराज जी को एक उपालम्भ रूप वार्त्ता सुनाई सो यह है कि—स्वामी जी आपने श्री जीवन राम जी महाराज को १९०६ में दीक्षा दी थी उन्होंने विक्रमाब्द १९१० में हमारे नगरमें एक बालक को दीक्षा दी है किन्तु उस बालक की ज्ञाति तो शुद्ध थी ही नहीं अपितु दीक्षा के पूर्व एक रात्री मेंहदी को भ्रान्ति में अकस्मात् वसमा ही लग गया जब प्रातः काल में उस बालक के हाथ पाद देखे तो कृष्ण वर्ण चीकने दृष्टि गोचर हुए फिर हम लोगांने श्री जीवनराम जी महाराज से विज्ञप्ति करी कि—हे स्वामी जी यह बालक धर्म्म का विरोधि होवेगा ॥

तब श्री जीवनराम जी महाराज ने कृपा की कि हे भाइयो जो कुछ इस बालक के भाग होंगे सो हो जायेगा इतनी बात कह कर फिर उस बालकको दीक्षित किया। सो उस बालक का नाम प्रथम तो दित्तामल्ल था सो फिर श्री जीवनरामजी महाराज ने उस बालक का नाम *आत्माराम रख दिया।

सो यह कार्य्य अयोग्य ही हुआ क्योंकि इन कारणों से विदित होता है कि धर्म पथ में विघ्न आवश्यमेव ही होवेंगे अर्थात् कब कका धर्म का ही विरोधि हो जावेगा। तब श्री महाराज ने कृपा की।

हां इन कारणों से तो यह काम अनुचित ही हुआ है तथा धर्म पथ में इस हुंडावसर्प्पिणी कालके प्रभाव से और भी विघ्न होवेगा।

सत्य है वृद्ध वाक्य कदापि असत्य नहीं होता अर्थात् जैसे श्री महाराजने कृपा की थी वैसे ही कार्य्य हुआ क्योंकि श्रीमहाराजने कहा कि प्रथम क्रियाओं के होने से यह समुचित कार्य्य नहीं हुआ है तथा भावी परन्तान है देखो समाधी जी को। इतने वाक्य श्रीमहाराज के मुख से लोग परमानंद हो गये किन्तु लोगों ने युक्ति से सारांश ही कह सुनाया॥

और चतुर्थ स्तुति निर्णय शंको द्धार नामक पुस्तक के २८१ वें पृष्ठोपरि लिखाहै कि-तेथी आत्मारामजी आनंद विजय जीनो गच्छ तथा मत सर्व गच्छो थी विपरीत समुर्छिम प्राय थोयो अइसे (इत्यादि) तथा उक्त पुस्तक के १८१ वें पृष्ठ से १८५ पृष्ठ पर्यन्त ये ही सिद्ध किया है कि आत्माराम जी श्रिमाता वा पूर्वाचार्य्यों के भी विरोधी हैं। इत्यादिक कथन आत्मारामजी के सहचारियों का है किन्तु श्री महाराज प्रथम ही कह चुके थे सो सत्यानंद से चौमासा व्यतीत हो गया फिर चतुर्मास के पश्चात्॥

---

आत्मारामजी का उत्पत्ति स्वरूप पूर्ण प्रकारसे देखो दुर्वादीमुख चपेटिका नामक ग्रन्थमें जोकि लाला मोहनलालजी का बनाया हुआहै।

स्वामी जी महाराज जय विजय करते हुए लोगों को मुक्ति पथ का मार्ग दिखलाते हुए दिल्ली में विराजमान होगये और श्री ५ कनीरामजी महाराज भी दिल्ली में ही विराजमान थे जो कि श्री ५ आचार्य कशोरीमल्लजी महाराज की संप्रदाय के थे ॥

तब श्री कनीराम जी महाराज ने कहा कि अमरसिंह जी आप को व्यवहार सूत्र के अनुसार तृतीय पद के धारक होना योग्य है ॥

क्योंकि व्यवहार सूत्र में लिखा है कि जो साधु दीक्षाश्रुत परिवार करके संयुक्त होवे वह आचार्य्य पद के योग्य होता है, सो आप तीन ही गुणों कर के सयुक्त हैं अपितु उक्त ही सम्मतिराय शेठ चांद-मल्ल अजमेर निवासी जी के पिता जी सुश्रावक श्रीमान् लाला कस्वीरमल्ल जो की भी थी किन्तु पुनः पुनः इन्होंने यही सम्मति दी कि श्रीस्वामि अमरसिंहजी महाराज आचार्य्य पदवी के योग्य हैं ॥

फिर श्री कनीराम जी महाराज जी ने यह भी कृपा करी कि श्री सुधर्म्म स्वामी जी से लेकर आज पर्य्यन्त आप के गच्छ में आचार्य्यों की श्रेणी चली आई है और आप के गच्छ के आचार्य्य श्रुत चारित्र में परिपूर्ण थे पुनः तादृश ही आप हैं ॥

तब दिल्ली में श्री सघएकत्व हुआ फिर श्री संघ ने उक्त सम्मति सहर्ष स्वीकार करके बारादरी नामक उपाश्रय में श्री महाराज विराजमाम थे वहां पर श्रीसंघ भी आया तब श्रीसंघ ने उक्त विज्ञप्ति श्री महाराज को करी साथ ही श्री कनीराम जी महाराज भी थे ॥

फिर श्री महाराज ने स्वामी कनीराम जी से कहा जैसे आप द्रव्य क्षेत्र काल भाव देखें वैसे ही करें ॥

तब श्रीकनीरामजी महाराज ने श्री संघ की सम्मत्यनुसार श्री स्वामी अमरसिंहजी महाराज को *आचार्य्य पद आरोपण किया ॥

---

* परम्परा से आचार्य्य पद देने की यह प्रथा चली आई है कि

तब ही श्री संघ ने दीर्घ (उदात्त) स्वर के साथ यह उच्चारण कर दिया कि आज कल भारत भूमि आचार्य्य पद से प्रायः हीन हो रही है क्योंकि बहुत से गच्छों में आचार्य्य पद की प्रथा बंद गई है किन्तु यह काम सूत्रोक्त स विरुद्ध है क्योंकि सूत्रों में यह आज्ञा दृष्टि गोचर है कि एक गच्छ में एक आचार्य्य एक उपाध्याय अवश्य ही स्थापन करने योग्य हैं ॥

सो आज दिन श्रीसंघने सूत्रोक्त प्रमाण के साथ श्री स्वामी अमर सिंह जी महाराज को आचार्य्य पद दिया है क्योंकि इस गच्छ में अवच्छिन्नता से श्री सुधर्म स्वामी से लेकर आज पर्य्यन्त आचार्य्य पद चला आया है सो आज परम आनंद का समय है कि श्री वर्द्धमान स्वामी जी के *८१वें पट्टोपरि श्री आचार्य्य अमरसिंह जी महाराज

श्रीसंघ की सम्मत्यनुसार जिस मुनि को आचार्य्य पद देना हो तब एक चमाडी (चादर) को कशर से विभूषित करके वास्तविकादि से अलंकृत करके और उस मुनिका नाम लिखके श्रीसंघ के सम्मुख साधु उस चादर को उस मुनि के ऊपर दे देवें फिर एक मुनि खड़ा होकर आचार्य के गुण वा आचार्य्य का गच्छ के साथ कैसा सम्बन्ध है और गच्छ को आचार्य के साथ कैसे वर्तना चाहिये इत्यादि संस्कृत रस भरे वचनों से अलंकृत एक निबंध पत्र को सुनावे फिर गच्छ यथा न्याय श्री आचार्य्य महाराज की आज्ञा शिरोधारण करे और इस भांति से उपाध्याय पदि गणावच्छेदिक. पदों की विधि भी जाननी चाहिये ॥

*श्री भगवान वर्द्धमान स्वामी जी के ८१ पट्ट—श्रीमती आर्य्या पार्वतीजी कृत ज्ञानदीपिकाग्रन्थमस्त् कृत श्रीपूज्यमोतीरामजी महाराज का जीवन चरित्र वा इतिहास और श्रीमान् जैनसमाचार के संपादक मि॰ वाडीलालजी कृत इत्यादि पुस्तकों में प्रकाशित हो चुके हैं ॥

विराजमान हुए हैं और पुनः पुनः जय जय शब्द का श्री संघनाद करता हुआ चिट्ठियों में वा पत्रों में तबही से श्रीपूज्यपाद श्रीआचार्य्य अमरसिंहजी महाराज ऐसे नाम लिखने लग गया तथा तब ही से श्री पूज्य महाराज चारों ओर ऐसे नाम प्रसिद्ध होगया फिर श्रीमहाराज ने दिल्ली से विहार करके अनुक्रम विचरते हुए १९१३ का चौमास सुनाम नगर में किया सो पूर्ववत् चौमासे में धर्मोद्योत हुआ। फिर चौमासे के पश्चात् श्रीस्वामी शिवदयालजी महाराज की दीक्षा हुई॥

श्री महाराज फिर ग्राम नगरों में धर्मोपदेश देते हुए पटियाला, नाभा, मालेरकोटला, लुधियाना, फलौर, फगवाडा, जालंधर, कपूरथला, गुरुका झंडियाला इत्यादि नगरों में जैनमत का प्रचार करते हुए वा गोपालवत् जीवों की रक्षा करते हुए अमृतसर में पधारे सो लोगों की अति विज्ञप्ति होने से १९१४ का चौमास अमृतसर में ही करदिया॥

अनुमान उक्त ही वर्ष में—ज्ञाति के ब्राह्मण विश्नचंद को दीक्षित किया क्योंकि यह विश्नचन्द्र, राय शेठ अमीरमल्ल राय शेठ चादमल्ल जी की भोजन शाला में रसोइये का काम करता था, किन्तु यह चंचल स्वभाव था संयम से पराङ्मुख हो कर आत्माराम जी के साथ ही चलागया था॥

क्योंकि श्री महाराज ने जब इन्हों का अनुचित व्यवहार देखा तब ही स्वः गच्छसे बाह्य कर दिये जिनका स्वरूप आगे लिखेंगे॥

सो अत्यानंद से चौमासा पूर्ण होगया फिर परोपकार करते हुए श्री पूज्य महाराज जीरे शहर में पधार गये पुनः लोगों की अति विज्ञप्ति होने से १९१५ का चामासा भी जीरे नगर में ही करदिया, सो धर्म ध्यान बहुत ही हुआ क्योंकि उस काल में जीरे नगर के सर्व भाई सम्यग्दृष्टि थे॥

फिर चौमासे के पश्चात् श्री महाराज ने यहाँ नवांशहर, सेवों बंगा, राहाँ जालंधर, इत्यादि नगरों में परोपकार करके *१९११ का चौमासा हुशियारपुर में किया स्याद्वादरूपी पानी से मव्यजनों का मन्तः करण पवित्र किया जो आग दूसाभावें अन्य नगरों के जाते थे यह भी पूज्य महाराज का दर्शन करके स्वः जन्म को पवित्र करते थे ॥

जब चौमासा शान्ति पूर्वक पूर्ण होगया तो भाईयों की अति विज्ञप्ति से बांगर देश की ओर विहार कर दिया ग्राम नगरों में परोप कार करते हुए १९१७ का चौमासा सुनामनगर में किया चौमासे में पूर्ववत् उद्योत हुआ ॥

फिर श्री पूज्य महाराज चौमासे के पश्चात् ग्राम नगरों में धर्मोप देश करने लगे।

किन्तु इन दिनों में श्री स्वामी रामबखजी महाराज वा विहन चन्द्रादि साधु यमुना पार के क्षेत्रों में विचरते थे ॥

+अपितु आत्मारामजी अमृतसर से आकर हनूमान्तस्व में स्थित था जो श्रीरामबख जी महाराज के दर्शन करने का अभिलाषी था क्योंकि श्रीरामबखजी महाराज श्रुत विद्या में परिपूर्ण थे क्रिया में अति तीक्ष्ण थे सो आत्माराम जी श्रुत विद्या के पढ़ने वास्ते इनके पास ही आगये तो स्वामी जी ने प्रेम पूर्वक श्रुत विद्या का दान किया ॥

---

* सम्वत् १९१४-१५-१६।१७—इन की भी दीक्षा हुई हैं किन्तु दीक्षा पत्र मुझे न मिलने के कारण से हो नहीं लिखी हैं क्योंकि बहुत से दीक्षा पत्र विहनचन्द्रादियों के ही पास थे ॥

+ आत्मारामजी के जीवन चरित्र में लिखा है कि १९१८ का चौमासा के पश्चात् आत्मारामजी ने रामबख विहनचन्द्रादि साधुओं

और श्री पूज्य महाराज ने बहुत से भव्य जीवों को सन्मार्ग में स्थापन करके १९१८ का चौमासा पटियाला में करदिया। सो चौमासा में लाला शिशुराम (श्री कृष्णदास) नागरमल्ल, दल्लनमल्ल, करोड़ा लाला काशीराम, दीवान, लाला घनैयामल्ल, इत्यादि भाईयों ने जैन धर्म का परमोद्योत किया फिर श्री पूज्य महाराज चौमासे के पश्चात् ग्राम नगरों में धर्मोपदेश देने लगे अनुक्रम विचरते हुए दिल्ली में पधारे जिन वाणी का प्रकाश किया लोग व्याख्यान सुन के परमानंद होते थे फिर चौमासा की विज्ञप्ति करने लगे किन्तु श्री महाराज जयपुर की ओर विहार कर गये॥

जब श्री महाराज जयपुर में पधारे तो नगर में परमोत्साह उत्पन्न हो गया चौमासा की विज्ञप्ति होने लगी तो स्वामी जी ने १९१९ का चौमासा जयपुर में ही कर दिया॥

धर्मवृद्धि अतीव हुई अपितु चौमासा में ही स्वामी गणेशदास वा स्वामी जयचन्द्र जी को श्रीपूज्य महाराज ने दीक्षित किया। क्योंकि श्री महाराज जी का ऐसा वैराग्य मय उपदेश था कि भव्यजन सुनते ही ससार मार्ग से भयभीत होते हुए दीक्षा के लिए उद्यत हो जाया करते थे पुनः दीक्षित होकर मुक्ति पथ की क्रिया के साधक बनते थे। किन्तु श्री महाराज चौमासा के पश्चात् अनुक्रम विहार करते हुए पुनः दिल्ली में ही विराजमान हो गये। तब ही धर्म के प्रकाश करने हारे पाखंड मार्ग उत्थापक तीन पुरुष दीक्षा के लिए दिल्ली में ही उपस्थित हुए

---

को आचारांग सूत्र, अनुयोग द्वार सूत्र, जीवाभिगमादि सूत्र पढ़ाये। सो यह निकेवल अनुचित लेख है क्योंकि परम पंडित श्री स्वामी रामबक्षजी महाराज से आत्माराम जी विद्या पढ़ते थे और स्वामी जी की सहायता से पंजाब देश में विचरना चाहते थे ? परंतु चर्चाचन्द्रोदय भाग तृतीय के पृष्ट २७ वें पर लिखा है कि, आत्माराम जी का बहुधा यह स्वभाव ही था, कि दूसरे को दोष देना इत्यलम्॥

जैसे कि मोक्षपतिव्रत थी। धर्मचन्द्र जी दयोकमल जी जब इन्होंने भी महाराज से विज्ञप्ति करी की हमको दीक्षा प्रदान करो तब श्री महाराज ने तीनों को ही दीक्षित करके श्री स्वामी रामचन्द्र जी महाराज के शिष्य कर दिये किन्तु *श्री धर्मचन्द्र जी महाराज की बुद्धि परम

---

* स्वामी जी का जन्म १८९५ माघ मास शुक्लपक्ष ११ बुधवार का था स्वामी जी की जन्म कुंडली से यही सिद्ध होता है कि यह महात्मा जी परम पंडित वैराग्य रूप थे ॥

जन्म कुंडली इयम्

चलत चक्र मिदं
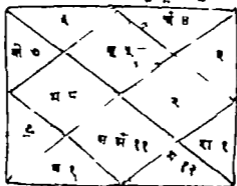
तीक्ष्ण थी जिस करके अल्पकालमें ही पंडित की उपाधि से विभूषित होगये। जिन्हों ने अनेक वार आत्माराम की कुयुक्तियोंका खंडन किया था बहुत से भव्यजीवों के हृदय कुयुक्तियों करके जो विह्वल होगये थे तिन की कुयुक्तियों का नाश करके तिन के हृदय रूपी कमल में सम्यक्त्वरूपी सूर्य्य स्थापन किया था॥

क्योंकि आत्माराम जी का अनुचित भाषणकरने का अभ्यास कुछ न्यून नही था फिर प्राग्वत् ही लेख लिखते थे जैसे कि॥

आत्माराम जी के जीवन चरित्र के—७४ वें पृष्टोपरि लिखा है कि-रामबक्ष जी ने आत्मारामजी से आधीनता के साथ प्रार्थना करी कि आप इस मुलक पंजाव में आगये हैं और मेरे गुरु मारवाड़ को चले गये हैं इस वास्ते आपने इस पंजाब देश में जोर लगा कर अजीव मत की जड़ काटते रहना इत्यादि सो यह उक्त लेख निकेवल असत्य है क्योंकि उन दिनों में आत्मारामजी श्रीस्वामी रामबक्षजी महाराज की सहायता से पंजाब देश में फिरना चाहते थे स्वामीजी से विद्या अध्ययन करते थे किन्तु स्वाभाविक गुण त्यागना दुष्कर है॥

इसी वास्तें चतुर्थस्तुति निर्णय शंकोद्धार के पृष्ट ५ पर लिखा है कि त्यारेत्यां श्रीअमदावादना साधर्मी तथा श्रीसंघना श्रावकों ना मुख थी वार्ता सांभली के आत्माराम जीने उत्सूत्र भाषण करवानो तथा बोली ने फरीजवानो कशो विचार नथी ने अहंकार नूं पूतलुं छे ते अमेसारी पेठे जाणीए छीए, इत्यादि यह लेख तपगच्छाधिपति का ही है किन्तु श्री महाराज ने प्रथम ही माल्लेरकोटले में भाईयों को कह दिया था कि-इन क्रियाओं से यही सिद्ध होता है कि यह बालक धर्म पथ में विघ्न करेगा सो वैसे ही होने के चिन्ह दिखने लगे। क्योंकि विक्रमाब्द १८—१९—२० के—अनुमान में पूर्व कर्मों के प्रयोग से अर्हत् भाषित सिद्धान्तों में आत्मारामजी को अश्रद्धा होने लगी मुनिकृत्यों से अरुचि हुई मिथ्यामोहनीकेबल से ऐसी आशायें उत्पन्न हुई कि कल्पित

ग्रंथों में वर्णन होगई जैसे कि। जैन शास्त्रों में श्वेत वस्त्र धारण करने की आज्ञा है किन्तु आत्मारामजी की आज्ञा पीताम्बर धारने की हो गई। जैनशास्त्रों में मुखपत्ति नामसे लिखी है जिस का अर्थ ही यह है कि जो सदैव ही मुखके साथ लगी रहे तिसका ही नाम मुखपत्ति है। किन्तु आत्माराम जी ने यही मन में निर्णय किया कि मैं तो हाथ में मुख पत्ति को रक्खूगा। तथा जैनशास्त्रों में मूर्तिपूजा का किञ्चित् भी कथन वा विधान नहीं है अपितु आत्मारामजी ने यही विचार किया कि अब लोग कुछ जागने लगे हैं फिर भी इन लोगों को एक महान् कूप में गेरना चाहिये अर्थात् सूत्रों में जिस वस्तु का विधान नहींहै उस बात का ही उपदेश करना मुझ योग्य है इसी वास्ते आत्मारामजी ने मोहनी कर्म की प्रबलता से अजीव पदार्थ में जीव की श्रद्धा करली॥

और महात्मा आत्मारामजी के लेखों से यह भी सिद्ध होता है कि आत्माराम जीने विचार किया कि जैन सूत्रों में कहीं भी असत्य भाषण करने की आज्ञा नहींहै किन्तु अब किसी अन्ययुक्ति से काम करना चाहिये

इसीवास्ते आत्माराम जी सम्यक्त्वशल्योद्धार के पृष्ठ २४१वें पर लिखते हैं कि–अपवाद मार्गमासृपा योज्जवाणी आज्ञापत्तको इत्यादि ग्रंथार्थे अन्यमी उत्पन्न हुई किन्तु यह वार्त्तायें आत्मारामजी के अन्तःकर्ण में थीं अपितु व्यवहार शुद्ध रक्खा हुआ था सो१९१०का चौमासा आत्मा रामजी ने आगरे शहर में श्रीमान् पं रत्नचंद्र जी के पास किया था विद्याध्ययनार्थे, फिर बहुतसूत्र वा संस्कृत भाषा के अध्ययनादि पठन करे चौमासे के पश्चात् विहार किया किन्तु वर्त्तापसखामहस्य से विवेक नहीं करते थे। जैसे कि आत्माराम जी के जीवन चरित्र के ४५ वें पृष्ठो परिलिखा है कि स्वामी रत्नचंद्र जी ने आत्माराम जी को यह शिक्षा दी कि एक तो भी जिन प्रतिमा को कभी भी निन्दा नहीं करनी १। दूसरा पेशाबकरके बिना धोवाहाथ कभी भी शास्त्र को नहीं लगाना २। और तीसरा अपने पास सदा दंडारखना ३ मैंने तुझ को भी जैनमत का असलसार बताया है तथा मुखपत्ती १९० अह सो बन स हर।रे वहाँ न

मुखपती बांधी है और तेरे वडों ने अनुमान दोसौ (२००) वर्ष सेबांधनी शुरु की है, यह ढूंढकमत अनुमान सवा दो सौ २२५ वर्ष से विना गुरु अपने आप मनःकल्पित वेषधारणकरके निकाला गया है, इत्यादि यह लेख असमजस हैं क्योंकि जो प्रथम लेख प्रतिमा विषय लिखा है कि प्रतिमा कि निंदा न करनी इस लेख में हम भी सम्मत हैं, इस से यह भी सिद्ध होता है कि आत्माराम जी प्रथम प्रतिमा की निंदा करते होंगे तभी तो उन्होंने शिक्षा दी कि मुनिजनों को क्या आवश्यकता है। कि जड़ की निन्दा करें किन्तु जो लोग प्रतिमा को अर्हत् की सदृश्य मानते हैं पुनःजड़ में जीवता की संज्ञा धारण करते हैं पूजा की सामग्री से उसे प्रसन्न करते हैं उसकेलिये मदिर की प्रतिष्ठा करते हैं अथवा उसके सन्मुख वादित्र वजाते हैं इत्यादि क्रियायें मिथ्यात् मार्ग को पुष्ट करती हैं इस प्रकार महात्मा जन उपदेश करते हैं नतुनिंदा। सो यदि आत्माराम जी के आशयानुसार प० रत्नचंद जी का आशय होता तो उनके शिष्य (उनकीसंप्रदाय के)स्वामी ऋषिराज जी सत्यार्थ सागरादि ग्रंथ काहेको वनाते जिस में मूर्त्तिपूजा की जड़ काटी है। अर्थात् मर्त्तिपूजा का युक्ति वा शास्त्रानुकूल निषेध किया है इसलिये आत्मारामजी काप्राग्लेख प्रथम शिक्षारूप कल्पित है। दूसरा लेख लिखा है कि-स्वामी रत्नचंद जी ने कृपा करी कि-पेशाव करके विना हाथ धोये कभी भी शास्त्र को नहीं लगाना, मित्रगण! आप स्वयं विचार करें कि जब उक्त कार्य्य आत्माराम जी करते होंगे तभी तो पं० जी ने शिक्षा दी है। और इस लेख से यह तो स्वतः ही सिद्ध है। स्थानक वासी महात्माजन आत्मारामजीका पुन.पुनः शिक्षा करते थे ऐसा काम मत किया करो। क्योंकि जिस शाखा में आत्माराम जी जाना चाहते थे वा जिस शाखा के ग्रन्थ भी पढ़े थे उस शाखा में उक्तकार्य्य अयोग्य नहीं बतलाया है।

उदाहरण श्री प्रतिक्रमण सूत्र श्रावक भीमसिंहमाणक के द्वारा प्रकाशित हुआ जो सम्वत् १९५१ माघवदी १३ मोहमयी में। तिस ग्रंथ के ५७९ वें पृष्टोपरि यह गाथा लिखो है जैसे कि॥

खाइमे भत्तोसफलाइ साइमेसुंठिजीरअजमाइ महुगुडतंबोलाइ अणाहारेमोयनिंबाई ॥ १४ ॥

जिस के भर्थ में यह लिखा है कि गो से छे कर सर्व भानि के भनिष्ट मूत्र उपवासादि कार्यों में पोने कल्पते हैं क्योंकि भर्हन् के मत में उपवास में *चातुराहार का नियम है किन्तु मूत्र भनाहार है ॥

तथा भोर भी देखिये—भाद्र दिन प्रस्य १८७१ ई॰ बनारस जैनप्रभा करमेस का प्रकाशित हुभा जिस के ११ वें पत्रोपरि लिखा है कि—श्रावक साधु को दो प्रकार का पात्र देवे । एक तो भाहार का पात्र । दूसरा प्रस्राव का पात्र २ इति वचनात् मब बुद्धिजन विचार करेंगे कि—अब संवेगी मुनि प्रस्रावका पात्र रखते हैं। तथा जब ये विहारादि किया करते हैं तिस समय वे क्या करते होंगे। क्योंकि भाहार के पात्र के साथ प्रस्राव के पात्र का स्पर्श कराते हैं वा नहीं यदि कहोगे हम प्रस्राव का पात्र नहीं रखते हैं तो भाप भपने पूर्वा चार्यों से विरुद्ध हुए। यदि कहोगे हम भाज कल नहीं रखते हैं। तो हम कहते हैं भाप के बड़े पूर्व रखते थे क्योंकि तभी तो श्रावक को प्रस्राव का पात्र देने की भाज्ञा लिखी है। यदि कहोगे यह लेख हमको भप्रमाण है। तो हम कहते हैं जो इन ग्रंथों में पूजा की विधि के मन: कल्पित लेख लिखे हैं तो उनको प्रमाणिक क्यों मानते हो ॥

यदि कहोगे हम भाहारादि के पात्र से स्पर्श नहीं कराते। तो यह बार्ता ही भसंभव है क्योंकि। पात्रों का समूह तो भाप एक ही हाथ में रखते हैं ॥

---

*चतुराहार यह हैं। भन्न १ पानी २ खादमखादमविदापकामादि स्वादमस्वादि ॥ ४ ॥

तीसरा लेख आत्माराम जी का यह है कि। पंडितरत्नचंद्र जी ने कहा कि दंड हाथ में सदा रखना सो यह भी कथन अयौक्तिक है क्योंकि—यदि प० रत्नचंद्र जी को दंड रखने की श्रद्धा होती तो उनके गच्छ में यह प्रथा अवश्य ही चल पड़ती किन्तु उनके गच्छ में उक्त श्रद्धा का प्रायःसर्वथा अभाव है क्योंकि वृद्ध रोगी के लिये सूत्र में दंड कहा है अपितु सर्व के लिये नहीं क्योंकि जब अर्हत् के मत में रजोहरण का दंड बिना वस्त्र के वेष्टन किये रखना नहीं कल्पता है कि कोई जीव भय न पावे तो भला दंड की आज्ञा सदैव काल के लिये कैसे संभव होसकी है किन्तु संवेगी लोकदंड से जो काम लेते हैं उसका उदाहरण से निश्चय कर लीजिये यथा। श्रीगणावच्छेदिक श्री ५ गणपतिरायजी महाराज श्रीस्वामी जयराम जी महाराज श्रीस्वामी शालिग्राम जी महाराज स्थाने पञ्च का चतुर् मास १९५१ का अंबाले नगर में था। उस काल में ही चंदनविजय नामक पंच संवेगियों का भी चौमासा अंबाले में ही था। तो एक दिन की बात है कि एक संवेगी हाथ में दंड लिये जारहा था तो एक मार्ग में महिष खड़ी हुई थी तो उस दंडी ने बड़े ही बल के साथ एक दंड महिष के मारा तो महिष दंड खाते ही भाग गई मार्ग स्पष्ट हो गया तो जब संवेगी महाशय ने पीछे को देखा तो दो साधु वीरशासन के दृष्टि गोचर हुए तो वह दंडी भी शीघ्र २ चलके भाग गया॥

अब पाठकगण अवश्यमेव ही विचार करेंगे कि संवेगी लोग दंड से इत्यादि काम लेते हैं किन्तु यह लोग संवेग पथ से भी पतित हैं क्योंकि इनके ग्रंथों में १ एक संवेगी को पंच दंड रखने की आज्ञा है परंतु यह लोग एक ही दंड रखते हैं यथा श्राद्धदिनकृत्य ग्रंथ के ३१वें पत्र को पढ़ो॥ पंच दंड विवर्णाधिकार॥

आगे जीवन चरित्र में लिखा है कि—हमारे बड़ों ने १५० वर्ष से मुख पर मुखपती बांधी है तेरे बड़ों ने २०० वर्ष से मुखोपरि मुख-

पत्ती बांधी किन्तु यह दूढकमत बिना गुरुके मनःकल्पित बिना गुरु के निकाला गया है इति वचनात् ॥

समीक्षा—सो यह लेख भी आत्मारामजी की बुद्धि का परिचय खूब देता है क्योंकि यदि पं०रत्नचन्द्र जी महाराज की यह श्रद्धा होती तो वह शीघ्र मुखपत्ती मुख से उतार डालते तथा अपने शिष्यों को सदैव ही उक्त उपदेश किया करते सो तो उन्होंने नाही उक्तउपदेश दिया है और न अपने मुख से मुखपत्ती उतारी है सो इससे सिद्ध हुआ कि आत्माराम जी सत्य से पराङ्मुख ही रहते थे ॥

प्रिय पाठकवृन्द—आत्माराम जी का ही मत जिन शासन से विरुद्ध अल्पकाल से उत्पन्न हुआ है जिस का स्वरूप आगे लिखेंगे किन्तु यह श्री जैन श्वेताम्बर स्थानक वासी ही जैन श्री श्रमण भगवत् वर्द्धमान स्वामी से अद्यावधि पर्यन्त अव्यवच्छिन्नता से चले आये हैं हाँ यह अवश्य ही मानना पड़ेगा कि किसी काल में अधिक किसी काल मे स्वल्प होते आए हैं मुहपत्ती मुखपर बांधना येही जैनधर्म का लिङ्ग है तथा सर्व विद्वानों ने जैनमत का वेष यही लिखा है—जैसे शिवपुराण आदि ग्रंथों में यह सर्व प्रमाण शास्त्रार्थ *नाभा तथा सुवर्ती मुखमर्दन में प्रकाशित हो चुके हैं। इसी वास्ते यहां पर नहीं लिखे ॥

किन्तु केवल दो प्रमाण ही दिग् दर्शन मात्र लिखते हैं—जैसे कि चतुर्थ स्तुतिनिर्णयशंकोद्धार के प्रथम परिच्छेद के पृष्ठपवन्धोपरि लिखा है कि सम्वत् १९५० मी सालमां आत्मारामजी महमदावाद मा समाचार छापामां व्याख्यान के अवसरे मोहपत्ति बांधवी हम अच्छी जानते हैं पण कोई कारण से नहीं बांधते हैं ॥

---

* नाभा शहर में राजसभा के मध्य में श्री स्वामी उदयचन्द्र जी महाराज के सन्मुख सवेगी वल्लभ् विजय जी पराजय प्राप्त कर चुके हैं सो उक्त चर्चा का सारा स्वरूप "शास्त्रार्थ नाभा नामक पुस्तक प्रकाशित हो चुका है ॥

# एहवुंछपाठयुंत्यारे विद्याशालानी बेठकना

श्रावकोए आत्माराम जीने पूछा साहेब आप मोंहपत्ति बांधवी रुडो जाणोछो तो बांधताकेम नथी त्यारे आत्माराम जी एतेने पोतानारागि करवाने कह्यु के हम ईहां से विहार करके पीछे बांधेंगे। इत्यादि प्रिय-गण। जब आत्माराम जी व्याख्यान के समय मुहपत्ति बांधनी अच्छी जानते हैं तो इससे सिद्ध हुआ कि जो पुरुष सदैव ही मुखोपरि मुह-पत्ती बांधते हैं वे जिनाज्ञानुकूल काम करते हैं क्योंकि जिन लिङ्ग होने से। तथा गुजरात देश में प्रायः बूटेरायजी की सम्प्रदाय के बिना शेष सर्व संवेगी लोग मुहपत्ती बाध के व्याख्यान करते ह तथा कित-नेक संवेगी लोग अपने आपको साधु नहीं मानते हैं सो वह अच्छे ह क्योंकि वह असत्य भाषण से बचाव करते हैं सो आत्मारामजी के कथन से ही मुहपत्ति सिद्ध है मुखोपरि बांधनी। तथा सांप्रति काल के विद्वान् भी जैनमत का वेष मुहपती करके मुख बाधना ऐसे मानते हैं देखिये जगत् प्रसिद्ध सरस्वती पत्र। एप्रिल १९११, भाग १२ संख्या ४ ॥ सपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी—इंडियनप्रेस—प्रयाग से जो प्रकाशित होता है। तिसके २०४ पत्रोपरि सप्तदशाचार्यों का चित्र दियागया है जिस में द्वादशमा चित्र श्रीआदिनाथ (ऋषभदेव) भगवान् का है तिस चित्रोपरि मुखपती मुख पर बांधी हुई है अर्थात्— श्रीऋषभदेव भगवान् के चित्र के मुखोपरि मुखपत्ती बांधी हुई है ऐसे चित्र जैनमत का दिखाया गया है। सो पाठकवृन्द! जब पर मत वाले भी जैनमत का वेष मुखोपरि मुहपती बांधना मानते हैं और श्री जैन श्री उतराध्ययन सूत्र, श्री भगवती सूत्र श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र, श्रीनशीथ सूत्र, इत्यादि सूत्रों में भी मुनि का लिङ्ग मुहपती माना है तांते आत्माराम जी का लेख मुहपती विषय हठ है। तथा पंडित रत्नचन्द्र जी की श्रद्धा यदि आत्माराम जी के लिखे अनुसार होती तो उनके बनाये मोक्ष मार्गादि ग्रंथों में वह श्रद्धान् अवश्य ही पायाजाता

किन्तु उनके बनाये ग्रंथों में उक्त श्रद्धा का लेश भी नहीं है अपितु श्री मान् पंडितजी महाराज के हाथ का लिखा हुआ एक हमारे पास जीर्ण पत्र है जिस में देव गुरु धर्म के विषय में लेख लिखा है। वह मध्यजीवों के दर्शनार्थ जैसे लेख है तैसे ही (प्रतिरूप) ( नकल ) लिखा जाता है जिसका पढ़के मध्यजन स्वयमेव ही जानकर कहेंगे कि श्रीयं रत्नचंद्रजी महाराज का क्या आशय था॥ अथ देवगुरु धर्मनी चर्चा लिख्यते—

१—देवसम्यकदृष्टि के मिथ्यादृष्टी ।

२—देव ज्ञानी के अज्ञानी ।

३—देव सम्वरी के असंवरी ।

४—देव प्रत्याखानी के अप्रत्याखानी ।

५—देव सव्रती के अव्रती ।

६—देव वृति के अवृति ।

७—देव एकेन्द्री के पचिन्द्रि ।

८—देव त्रस के स्थावर ।

९—देव मनुष्य के तिर्यंच ।

१ —देव सागार के अनागार ।

११—देव सूक्ष्म के बादर ।

१२—देव परिग्रहधारी के अपरिग्रहधारी।

१३—देव आहारिक के अणाहारिक।

१४—देव भावक के अभावक।

१५—देव वीतरागी के सरागी ।

१६—देव न्हाय पुष्पविलेपन भोगी के अभोगी।

१७—देव ८ मास ४ मास विहारी के अविहारी।

१८—देव जीवेमारे के पचमे मारे ।

१९—देव शास्त्रश्रोता के अश्रोता ।

२०—देव चर स्वभावी के स्थिर स्वभावी।

२१—देव पासत्था के अपासत्था ।

२२—देव सर्वज्ञ के असर्वज्ञ ।

२३—देव ८ कर्म संयुक्त के ४ कर्म संयुक्त ।

२४—देव सण्णी के असण्णी ।

२५—देव ४ प्रजा के ६ प्रजा ।

२६—देव १० प्राण के चार प्राण ।

२७—देव मुक्तगामी के ससारगामी ।

२८—देव १३ गुणस्थाने के चौथे गुणस्थाने ।

२९—देव शुक्ल लेशी के अलेशी ।

३०—देव पुरुष वेद स्त्री वेद के नपुंसक वेदी ।

३१—देव उपदेश देवे के न देवे ।

३२—देव रोमाहारी के कवलाहारी ।

३३—देव कृत गड के अकृत गड ।

३४—देव मुक्त के अमुक्त ।

## गुरु ।

१—गुरु हिंसक के अहिंसक ।

२ गुरु सत्यवादी के असत्यवादी ।

३—गुरु अदत्तग्राह्यी के दत्तग्राह्यी ।

४—गुरु कनक कामनी के त्यागी के अत्यागी ।

५—गुरु परिग्रहधारी के अपग्रहधारी ।

६—गुरु प्रतिवंधक के अप्रतिवंधक ।

७—गुरु धर्मोपदेशी के हिंसा उपदेशी ।

८—गुरु आश्रवी के अणाश्रवी ।

## धर्म्म ।

१—धर्म जीव हिंसामें जीवदया में ।

२—धर्म ज्ञानमें के अज्ञान में ।

मिश्रन भाषायुक्त मूर्त्तिओं को वंदना रूप उस में रुचि बढने लगी। क्योंकि श्री भगवन् को अर्द्धमागधी भाषा है।

यथा—श्री समवायांगजी सूत्र स्थान ३४।

सूत्र-अद्धमागधीएभासाए धम्ममाइखति २२ सावियाणं अद्धमागधी भासा भासिज्जिमाणिते सिसव्वेसिं आयरियमणा रियाणं दुप्पय चउप्पयमिय पसु पक्खिसरिसिवाणं अपणो हित सिवसुहवाए भास ताए परिणम्मई ॥ २३ ॥

अस्यार्थः—श्रीसमवायांग जी सूत्र के ३४ वें स्थान के। २—२३ वें सूत्रमें यह लिखा है कि श्री भगवान् की अर्द्ध मागधी ही भाषा है अर्थात् भगवन् अर्द्ध मागधी भाषा में ही धर्म कथा कहते हैं सो वह भाषा आर्य अनार्य द्विपाद चतुर्पाद मृग पशुपक्षि सर्पादि सर्व जीव अपनो अपनी भाषामें ही समझ जाते हैं।

तथा प्रज्ञापण सूत्र के प्रथम पद में ऐसे कथन है :—

सूत्रम्- सेकिंतं भासायरिया, भासाय रिया अणेगविहापणत्ता तंजहा जेणंअद्धमागहायभासाए भासंति जथणं बंभीलिवीपवत्तई बंभीणलिविए अठारसविहेलेह विहाणे पं०तं०बंभी १ जवणालिया २ दोसा ३ पुरिया ४ खरोट्टी ४ पुक्खरसारिया ६ भोगवइंया७ पहाराइयाउय ८ अंतक्खरिया ९ अक्षर-पुठिया १० वेणइया ११ णिसाइया १२ अंकलिवी १३ गणितलिवी १४ गंधव्वलिवी १५ आदंशलिवी १६ माहेसरी १७दामिलीपोलंदी १८ सेतंभासाय रिया॥

भावार्थ—शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन् आचार्य कौन हैं ? गुरुउत्तर देते हैं कि हे शिष्य आचार्य के अनेक भेद हैं किन्तु जो अर्द्ध मागधी भाषाभाषण करते हैं वे आचार्य हैं और जो *ब्राह्मीलिपी के अष्टादश भेद हैं उन्हीं लिपियों के साथ ही अर्द्ध मागधी भाषा का प्रयोग होता है वेभी आचार्य हैं ।

तथा श्री विवाह प्रज्ञप्ति सूत्र के पञ्चम शतक के चतुर्थोद्देश में यह सूत्र है ।

यथा—देवाण भंतेकयराए भासाए भासंति कयरावा भासा भासिज्जमाणी विस्ससति गोयमा देवाण अद्धमागहाए भासाए भासंति सवियणं अद्ध मागहा भासा भासिज्जमाणी विस्ससति ।

इतिवचनात् ॥

भावार्थ—श्री गौतम प्रभु श्रीभगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन देवते कौनसी भाषा भाषण करते हैं तथा कौनसी भाषा भाषण की हुई देवतों को प्रिय लगती है ? तब भगवान् उत्तर देते हैं कि हे गौतम देवते अर्द्ध मागधी भाषा भाषण करते हैं वही भाषा भाषण की हुई देवतों को प्रिय लगती है ?

तथा हंटर साहिब अपने रचे सेक्सिप्तहिंदुस्तान के इतिहास में लिखते हैं कि हिंदुस्तान की मूलभाषा पुरातो प्राकृत है तथा कहूंए प्राचीन काव्यार्थ पर की टिप्पणी करते थे लिखते हैं कि प्राकृतभाषा सर्व भाषाओं से प्रथम है ?

---

* यह अष्टा दश ब्राह्मी लिपिके भेद किसी स्थान पर सविस्तर देख देखने में नहीं आये हैं इसलिये नहीं लिखे हैं मूल सूत्र में तो केवल नाम ही हैं

तथा हिंदुस्तानका इतिहास इडवल्युथापसन्न एम•ए० भी सर्व भाषाओं से पुराणी सर्व भाषाओंकी माता,*प्राकृत ही है अर्थात् सर्व भाषा प्राकृत से निकली है ऐसे लिखते हैं तथा चंड व्याकरणका वृत्ति कर्त्ता यूरोपियन विद्वान् भी पूर्ववत् ही लिखता है सो यह मागधी भाषा अनत अर्थ की सूचक है इसीवास्ते गणधर देवोंने आगम प्राकृत वा मागधी भाषा में ही रचे हैं और आवश्यक क्रियायें भी मागधी भाषा में ही रची हैं। किन्तु जो तपागछियों का आवश्यक है वे सर्व मागधी भाषा में नहीं है अपितु संस्कृत ? प्राकृत, मारवाडी, गुर्जर इत्यादि मिश्र भाषा में हैं सो इसीवास्ते वह गणधर कृत विदित नहीं होता ॥

फिर श्री अनुयोग द्वार जी सूत्र में षडावश्यक के विषय में यह गाथा लिखी है :—

यथाः—सावज्ज जोगविरई उक्कीतण गुण वउ पडिवत्ती खलियस्स निंदण वण तिगिच्छं गुण धारणाचेव?

आस्यार्थः—आवश्यक सूत्र का सावद्य योग निर्वृति रूप प्रथमाध्यायहै १। चतुर्विंशति देवकी स्तुति रूप द्वितियाध्याय है २। गुणवंतों को वदना रूप तृतियाध्याय है ३। पाप से प्रतिक्रम रूप चतुर्थाध्याय है ४। पाप की आलोचना रूप पञ्चमाध्याय है ५। प्रत्याख्यान रूप षष्टमाध्याय है ६। सो यह सर्व अध्ययन विद्यमान हैं किन्तु संवेगी लोगोंने षडावश्यक में मनः कल्पित चैत्य वदना स्थापनाचार्य्य व्यंतरादि देवतों की स्तुतियें लिख धरी हैं ?

---

* हिन्दी भाषा की उत्पत्ति नामक पुस्तक में सम्पाक सरस्वती पत्र महावीर प्रसाद द्विवेदी जी भी प्राकृत भाषा को बहुत ही प्राचीन लिखते हैं ॥

सो आत्माराम जीकी श्रद्धा सनातन पदार्थद्रयक से भी विषम हो गई मन। कल्पित मार्ग को यदि श्रद्धा दृढ़ होगई ।

जब आत्माराम जी मालेरकोटले में आए तो विश्नचन्द्रादि साधुओं को भी सम्यक्त्व से पतित किया क्योंकि इसी वास्ते सूत्रों में लिखा कि (कुसंग क्या क्या नहीं अकार्य कराता) अर्थात् सर्वही अकार्य इसी से होते हैं किन्तु श्री आत्मारामजी के जन्म चरित्र में यह लिखा है कि विश्नचन्द ने पेशाब से हाथ धोए आत्माराम जी ने उस को बहकिया ॥

प्रियपाठकगण ! यह सर्व असमञ्जसही लेख हैं ! क्योंकि आत्माराम जी का यह बहुधा ही स्वभाव था कि अपना दोष पर के शिरधरना इत्यर्थः ॥ और यह प्रथा संवेगी लोगों में अब तक भी प्रचलित है किन्तु इस का प्रमाण आगे लिखेंगे अपितु यह संवेगी लोग प्रायः असत्य लिखने से किञ्चित् भी भय नहीं करते देखिये बम्बई कल्पोदय भाग तीसरा पृष्ठ १२ पंक्ति ७ पर संवेगी साधु जी के लिखने पर हमारे गुरु महाराज के पास आये सब झूठ लेखों से सरा सर भरे हुए थे, इत्यादि सो आत्माराम जी की श्रद्धा पूर्व कर्मों की सहायता से भिन्न भिन्न हुई इधर श्री आचार्य्य महाराज श्री का १९२१ का चौमासा नाभा नगर में आनंद पूर्वक व्यतीत हो गया फिर श्री पूज्य महाराज ग्रामानुग्राम विचरते हुए तथा जय पताका हाथ में लेते हुए मालेरकोटला, लुधियाना फगौर, फगवाड़ा जालंधर, कपूरथला इत्यादि नगरों में धर्मोपदेश करके १९२२ का चौमासा भव्यों के अतीव आग्रह से गुरु के जंडियाले में ही कर दिया ! मैं इस बातको पूर्वलिख चुका हूं कि पूर्व कर्मोदय से आत्माराम जी का चित्त सम्यक्त्व से तो पराङ्मुख हो ही गया था किन्तु अब साथ में भी प्रवृत्ति आत्माराम जी की अधिक हो गई जैसे कि आत्मा राम जी के जीवन चरित्र के ५७ वें पत्रोपरि लिखा है कि तथापि

आत्मारामजी ने विचार किया कि इस समय कुल पंजाब देश में प्रायः ढूंढकमतका जोर है, और मैं अकेला शुद्ध श्रद्धान प्रगट करूंगा तो कोई भी नहीं मानेगा इस वास्ते अंदर शुद्ध श्रद्धान रख के बाह्य व्यवहार ढूंढकों का ही रख के कार्य सिद्ध करना ठीक है अवसर पर सब अच्छा हो जावेगा ! इत्यादि !

पाठकगण ! उक्त लेख से स्वयमेव ही विचार लेवें कि आत्माराम जी माया में भी कैसे प्रवीण थे, भला शूरनाका यही लक्षण है या सत्य वादियों का ?

तथा श्री सूत्र कृतांग के प्रथम श्रुत स्कध के द्वितीयाध्याय के प्रथमोद्देशक की ९वीं गाथा में लिखा है कि :—

जइवियणि गणेकिसे चरे जइवियभुंजइमास-मंतसो जेइह मायाईमिज्जई आगंतागब्भाय अणंतसो॥ ९ ॥

अस्यार्थः—यदि कोई नग्न भी हो जावे शरीर को कृश भी करे देश में भी विचरे मास २ के अन्तरे भी आहार करे यदि ऐसी वृत्ति युक्त होकर भी छल करे तो अनत काल पर्यन्त गर्भादि में प्रवेश करता है ?

प्रिय मित्रगण ! आत्माराम जी ने उक्त सूत्रोक्त कथन को भी विस्मृत कर दिया ?

फिर श्री कनीराम जी महाराज आत्माराम जी को मिले तिन्हों ने भी आत्माराम को बहुत हित शिक्षायें दीं !

किन्तु आत्मारामजी को उन शिक्षाओं से कुछ भी लाभ न हुआ अपितु अनेक प्रकारकी बातों से आत्मारामजी ने विश्नचन्द्रादि साधुओं को भी सम्यक्त्व से पतित किया !

और श्रावक लोगों को भी जिनमत से विमुख किया किन्तु जिन पुरुषों के आचार भी शुद्ध नहीं थे उनको धर्म्म के परीक्षक ठहराया जैसे कि आत्मारामजी के जीवन चरित्र के ४८ वें पत्रोपरि लिखा है कि पट्टी वाले लाला घसीटामल्ल ने अपना संशय दूर करने के वास्ते अपने पुत्र अमीचंद को व्याकरण पढ़ाना शुरू कराया जब वो पढ़कर तैयार हो गया तब घसीटामल्ल ने कहा कि पुत्र किसीका भी पक्षपात नहीं करना जो शास्त्र में यथार्थ वर्णन होवे सो तू मुझे सुनाना तब अमीचंद ने कहा कि पिता जी जो कुछ आत्मा राम जी तथा विश्न चन्द वगैरह कहते हैं सो सर्व ठीक ठीक है और पूज्य श्रीअमर सिंह जी तथा उनके पक्ष के ढूंढक साधुओंका जो कुछ कथन है सो सर्व असत्य और जैन मत से विपरीत है यह सुन कर लाला घसीटामल्ल भी ढूंढक मतका छोड़के शुद्ध श्रद्धान वाले होगये पूर्वोक्त अमी चन्द इस समय गुजरात मारवाड़ पंजाब वगैरह देशमें पंडित अमी चंद जी के नाम से प्रसिद्ध हैं और प्राय आत्माराम जी के संवेग मत अंगीकार किये पीछे जितने नूतन शिष्य हुए सर्वनेयोड़ा बहुतसकर ही पंडितजी के पास विद्याभ्यास किया यावत्कि अब तक कियेही जाते हैं ?

प्रिय पाठकगण ! यह वही पंडित जी हैं जिनका स्वरूप चर्चा अम्भोदय भाग तीसरे के स्वप्न के बयान में लिखा गया है ॥

देखिये पृष्ठ ५० पर—

अपितु श्री पूज्य महाराज चौमासा के पश्चात् अमृतसर में विराजमान हो गये इधर से आत्मारामजी विश्नचन्द्रादि गण भी श्रीमहाराज के दर्शनार्थ अमृतसर में ही आगये।

तब आत्मारामादिगण श्रीपूज्य महाराज जी को बहुतही विनय करने लगे किन्तु श्री पूज्य महाराज महाभद्र पुरुष प्रसन्नात्मा थे तिन्होंने आत्मारामजी को तो व्याख्यान करने की आज्ञा देदी अपितु सत्य कहा है किसी कवि ने प्राण जावो न जाय पर प्रकृति न जावे कि

इस कहावतके अनुसार आत्मारामजी व्याख्यानमें उत्सूत्र भाषण करने लगे तब श्रीपूज्य महाराज ने वा लाला सौदागरमल्ल (जो कि स्यालकोट से श्री पूज्य महाराज जी के दर्शनार्थ आये हुए थे) ॥

तिन्हों ने भी आत्मारामजी को बहुत ही हित शिक्षायें दीं और श्रीमहाराज ने आत्माराम को यह भी कहा कि—हे शिष्य यह मनुष्य भव मिलना पुनः पुनः दुर्लभ है हिंसा धर्म से ही आत्मा अनादि काल से परिभ्रमण करता चला आया है एक वर्ण भी सूत्रका अन्यथा किया जावे तो आत्मा अनंत भवों के कर्म एकत्व कर लेता है ॥

और तूं क्यों अर्थों का अनर्थ करता है यदि तुझे किसी बात की शंका है तो तूं निर्णय कर ले वा शास्त्र द्वितीय वार पढ़ले ॥

तब आत्माराम विश्नचन्द्रादि साधुओं ने श्री पूज्य महाराज के चरण कमल पकड लिये पुनः हाथ जोड़ के कहने लगे कि। हे महाराज जी हमतो आप के दास हैं जो कुछ आप की श्रद्धा है सो हमारी है जो हमने सूत्र से विरुद्ध कहा है तिसका हम को यथा न्याय प्रायश्चित देवें या क्षमा कर देवें इत्यादि परम नम्रता करते हुओं को तब, श्री महाराज ने यथा योग्य दंड देदिया ॥

फिर उन्हों ने अपने आप ही एक पत्र लिखकर श्री पूज्य महाराज को दे दिया ! पाठकगण पत्र इस लिये दिया सिद्ध होता है कि ! उन्होंने यह विचार किया होगा कि पत्र लिख कर देने से हमारी प्रतीत ठीक २ श्रीमहाराज के चित्त में बैठ जायगी क्योंकि जब प्रतीत हो जावेगी तब हमारा काम निर्विघ्नता से होवेगा अपितु पत्र भी नामाङ्कित करके दिया ॥

सो भव्य जीवों को इस स्थान पर उक्त पत्र की प्रतिरूप (नकल) लिख कर दिखाते हैं ॥

जिस के पढ़ने से पाठकों को भली भान्ति निश्चय होजायगा कि विश्नचन्द्रादि साधुओं की विद्या बुद्धि कैसी थी ॥

किन्तु पाठक वृन्द यह स्वयमेव ही जान गये होंगे कि विश्नचं- न्द्रादि गण को वर्णों के स्थान की भी खबर नहीं थी क्योंकि यदि विश्नचंद्रादिगण को वर्णों के स्थान विदित होते तो फिर वह कण्ठ स्थान के वर्ण की जगह मूर्द्धन् स्थान का वर्ण क्यों लिखते ? जैसे कि (लिखतं) शब्द को लिषत शब्द क्यों लिखते यदि कोई यह शंका करे कि आत्माराम जी के हस्ताक्षर नहीं हैं तो उसका यह उत्तर है कि आत्माराम जी के गुरु श्री जीवणराम जी महाराज जी के जो दस्खत हैं तो आत्माराम जी की क्या आवश्यकता थी ॥

सो आत्माराम जो को श्री महाराज ने बहुत ही हितशिक्षायें दीं किन्तु अन्तः करण आत्माराम जी का शुद्ध न होने के कारण से उन शिक्षायों से आत्माराम जी कुछ लाभ न ले सके क्योंकि श्रीनंदी जी सूत्र में लिखा है कि :—

**सासमासउ तिविहापणत्ता तंज्जहा जाणिया, अजाणिया, दुवियड्ढा, जाणिया जहाखीर जहा हंसा जेघुट्टंति इह गुरु गुणसमिद्धा दोसेय विवज्जंति तंजा- णसुजाणिय परिसं ।१। अजाणिया जहा जाहोइ पगइ महुरा मियरिवय सीहकुक्कुडभूया रयणमिव असंठविया अजाणिया साभवेपरिसा ।२। दुवियड्ढा जहानइ कत्थइ निम्माउंनय पुच्छई परभवस्स दोसेण वत्थिइव वायपुन्ना फुट्टइग। मिल्लयादुवियड्ढा ॥३॥**

भावार्थः—तीन प्रकार की परिषदा होती हैं जैसे कि ज्ञात ॥ १ ॥ अज्ञात ॥ २ ॥ दुविदग्ध ॥३॥ ज्ञात परिषद् ऐसे होनी है जैसे कि हंस दुग्ध जल को भिन्न २ करता है इसी प्रकार सुन्दर परिषदागुरु के

मुख से आत्माराम को सुन करके शेष रूपसक को छोड़ती है गुण को धारण करती है वह सुज्ञात परिषद् है। अज्ञात परिषद् ऐसी होती है जैसे प्रकृतिका मधुर अर्थात बाल्यावस्था करके युक्त मृग का बालक सिंह का बालक कुकुर का बालक जैसे मनुष्यादि का संग करता है। प्राय ऐसे ही प्रकृति युक्त होजाता है तथा जैसे रत्न धूल में पड़ा हो सो धूल के दूर होने पर वे रत्न शुद्ध हो जाता है ऐसे ही अज्ञात परिषदा अच्छे महात्माओं का संग करने से पवित्र होजाती है॥

दुर्विदग्ध परिषद् इस प्रकार से है जैसे किसी ने गुरु के मुख से तो पदार्थों का निर्णय नहीं किया किन्तु बिना गुरु के अर्थ किये ही अपने आप साक्षर कहलाने लगा यदि किसी विद्वान् का संयोग मिलता है तो अपमान के भय से उनसे दूर ही रहता है अपितु अविद्वानों के मध्य में पंडित कहलाता है किन्तु जैसे वायु करके पूर्ण (बस्तिकाय) मशक जल से तो हीन होती है अज्ञात अर्थों को जल से भरी हुई दिखती है इसी प्रकार वह पुरुष ज्ञान से तो हीन है और हठ में उपत है नाहीं हठ को छोड़ता है उस पुरुष को सुपुरुषों की शिक्षा से कुछ भी लाभ नहीं होता इसी प्रकार आत्मारामजी को श्री महाराज की शिक्षाओं से अतीव लाभ न हुआ किन्तु ऊपर से विनय भक्ति करता हुआ विद्याध्ययन कि समाप्ति देखते हुए ने अमृतसर से विहार करके १९२१ का चौमासा हुशियारपुर में जा किया और श्रीपूज्य महाराजने १९२२ का चौमासा अमृतसर में ही कर दिया और उक्त वर्ष में ही सुनाम शहर के रहने वाले वैद्य तुलसीराम ने श्री महाराज के पास दीक्षा धारण करी॥

पाठकों को स्मृति होगा कि श्री महाराज ने श्री आत्माराम जी को हित शिक्षायेंदी थीं जिनके ही प्रयोग से आत्मारामजी ने ११ साल १९२३ के चौमासे में लिखकर पत्रेदार जी को भेजे क्योंकि इस साल

में ढूंढराय जी का चौमासा गुजरांवाले में था सो हम भी यह प्रश्न जैसे के तैसे ही भव्यजीवों के जानने के वास्ते लिखते हे ॥

स्वस्ती श्रीमच्छांतिनाथायनमः।

## अथ प्रश्न लिखते हैं:—

१—श्री सिद्धांत में मार्ग तीन कह्या है उत्सरग १ अपवाद २ धोष ३ अने अष्ट दस पाप स्थानक कहे हैं सोई उत्सरंगमार्ग में अष्टदस पाप स्थानक किस रीत से वर्णन करया है अने अपवाद मार्ग मै अष्ट दस पाप स्थान कैसे कथन किये हैं अने धोष मार्ग में कैसे अष्ट दस पाप स्थान का निरूपण कीया है एवंपूर्वोक्त प्रकारेण तीनों मार्ग के ५४ पाप स्थानक हुये सो इन ५४ का न्यारा २ स्वरूप लिषणा फिर। अैसे लिषणा इन्हो ५४ मध्ये अक्षा भगवान् जी की कौन से पाप सेवने की है कौन से मे नही इति ॥

२—श्री प्रवचनसारोद्धारमें श्रावक के १३ सो कोड ८४ कोड १२ लाष ८७ हजार २०२ भांगा इन का सर्व पृथग् २ स्वरूप लिषणा फिर अैसे लिषणा कौनसे भांगे प्रतिमा जी का पूजना है अनै कौनसे भागे मैं यात्रा करणी कही है इति ॥

३—तपागच्छ वाले कहते हैं भगवान् जी के मिंदिर में तरूणी वेस्या का नाटक करवाणा अने खरतरागच्छ वाले निषेध करते हैं सो तुमारे तांइ कौन सी बात उपादे है अनै साञ्च मध्ये तरुणी अथवा वृद्ध वा हींजडा यह तीना मांहि किस का नाच करवाणा कह्या है इति ॥

४—और तपागछीये कहते हैं साधु से न रह्या जाय तो वेस्यादि से कुशील सेवे तो पाप नहीं और आचारंगजीमें कहा है शील न पले तो गल पासादि करी मरे सो इनका समाधान कैसे है इति ॥

५—आगे तपागछीय कहते हैं द्रोपदी श्राविका है अने उघनियुक्ति मे लिख्या है मिथ्या दिष्टनी कही है सो इसका न्याय कैसे है ॥

६—और कल्प सूत्र में लिखा है २ हजार वर्ष भगवान् जी के पोछे उदय २ पूजा साधु साध्वी की होगी सो भस्म ग्रह कद उतरया कौन से सवत् में उदय २ पूजा हुई ॥

७—और वर्तमान में आचार्य कौनसा है उपाध्याय कौनसा है तिसका नाम लिखना सूत्रोंक अरिहंत कौनसे देश में है ॥

८—और अष्टादस पाप स्थान ऊपर पृथग २ सात नय का स्वरूप लिखना प्रणाति पात ऊपर सात नय मृषावाद ऊपरि सात नय एवं सर्व ऊपरि उतारजो फिर लिखना कौन सो नय के मत में पाप अष्टादस सेवने की आज्ञा है कौन सो नय के मत में पाप सेवने का निषेध है ॥

९—फिर सात कुविसन मध्ये स्याद्वाद के भांगे न्यारे २ करके बताते हैं फिर कौन से भांग में सात कुविसन सेवने की आज्ञा है ॥

१०—सिद्धांत में मुख पत्ती जो बांधी है जो थूक गिरने की रक्षा वास्ते है वा वायु के जीवों की रक्षा वास्ते है वा लिंग वास्ते है इति प्रश्न १०—

११—महा नीशीथ के पत्र में नवनीत सार अध्ययन में वज्र स्वामि के शिष्य ४९९ पर्यंत में एसा पाठ है चंद्रप्रभ की यात्रा में प्रश्न है तीर्थयात्रा जाने सं कल्याण एकांत मर्यासम होता है इस कार्य से तीर्थयात्रा का निषेध किया गया है महा निसीथ सूत्र १ ० अध्ययन वाचना ४२ •श्लोक संख्या४१००४ लोगो मांहि लिखत देख लेना उसका तात्पर्य लिखना ११ प्रश्न का जबाब टीका वा वा भकर्ष वा सूत्र के पाठ जुदा लिखना मृषावाद वार्त्ता न लिखना सत्यम् दसखत आत्माराम• १९२१—

प्रिय पाठकगण ! यह प्रश्न भगवानदासजी ने जैसे पूर्व रूप जी का भेजे थे वैसे ही हमने लिख दिये हैं किन्तु यह प्रश्न मनुष्य भाषा

में लिखे हुए हैं इन प्रश्नों के देखने से यह तो भली प्रकार विदित हो जाता है कि आत्माराम जी व्याकरण के भी अनभिज्ञ थे सो पूर्ण समालोचना ३४ के चौमास में लिखेंगे अपितु बूटेरायजी ने इन प्रश्नों का किञ्चत् भी उत्तर नहीं दिया है क्योंकि बूटेराय जी कोई विद्वान् पुरुष नहीं थे नाही उन्हों ने कोई सूक्ष्म ज्ञान सीखा था शेष इन की बनाई हुई मुखपती चर्चा नामक पोथी से निर्णय हो जाता है कि यह * बूटेराय जी विद्वान् नहीं थे और तपगच्छ को भी अन्तःकरण से अच्छा नही समझते थे क्योंकि इस बातको बूटेराय जी ने अपनी बनाई पुस्तक में स्पष्ट कर दिया है ॥

---

* बूटेरायजी का जन्म-पंजाब देश में लुधियाना शहर के तरफ बलोलपुर से सात आठ कोस दक्षिण के तरफ दूलुवां गाम में टेक-सिंह जाट की कर्मा नामा स्त्री की कूख से विक्रम संवत् १८६३ में हुआ था पुण्योदय से इन्हों ने सम्वत् १८८८में श्री १००८ पूज्य मलूक चंद जी महाराज के गच्छ के श्री मुनिनागरमल्ल जी महाराज के पास दीक्षा धारण करी फिर यह चित की चंचलता के प्रयोग से एकले ही फिरने लगे अन्यदा समय यह पंजाब देश के स्यालकोट के जिला में पसरूर नामक नगर में चले गये सो वहां पर इन्हों ने अपने उपदेश द्वारा मूलचंद ओशवाल को वैराग्य दिया और विनाज्ञा ही मूण्ड लिया तब मूलचंद का ताया(महत्पिता) सोहनेशाह स्यालकोट वाला जीवंदेशाह भावडा पसरूरवाला जोकिमूलचंद का मामा(मातुलः) था तिन्हों ने गुजरांवाला में बूटेराय जी की वा मूलचंद की मुखपत्ति तोड़ डाली फिर मुख से कहने लगे आपने किसकी आज्ञा से शिष्य किया है यदि तुम सूत्रानुसार क्रिया नहीं करसके हो तो तुम मुहपत्ति को मत रखो अर्थात् मुखोपरि मत बांधो क्योंकि साधु के यह कर्म नहीं है तब इन की श्रद्धा मुखपत्ति बांधने की उतर गई किन्तु जो

बूटेराय जी को क्या किन्तु अन्य किसी भी सम्वेगी महाशयने इतना साहस नहीं किया है कि इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देवे और आत्मारामजी के जीवन चरित्र के पढ़ने से यह तो स्पष्ट हो निश्चय होजाता है कि आत्माराम जी श्री महाराज के सन्मुख होने मे असमर्थ थे जब कभी दर्शन करते थे तो श्री पूज्य महाराजजी की स्तुति करके किनारा पकड़ते थे किन्तु सत्य से पराङ्मुख होकर स्वकपोल कल्पना द्वारा लोगों को भ्रम में डालते थे और पूछने पर असत्य भाषण का नवीन भक्ति करते थे जैसे कि आत्माराम जी के जीवन चरित्र के ५१ वें पृष्ठोपरि लिखा है कि—हुश्यारपुर में ढूंढा करके पचेषीलाल बूटेराय जी के पास जाकर सम्वेगी दीक्षा लेकर विचरने लगा और ठिकाने ठिकाने कहने लगा कि—आत्माराम जी के अन्दर शुद्ध सनातन जैनमत की श्रद्धा होगई है और प्रत्यक्ष में ढूंढक मत का भेष और व्यवहार रखता है परन्तु ढूंढकमत की आस्था बिलकुल नहीं है।

---

मूलचंद को भेजने थे सो मूलचंद फिर भी बूटेरायजी के पास आगया सो बूटेरायजी ने फिर भी बिन आज्ञा से मुंह बंधिया फिर बूटेराय जी अपने आपको साधु कहाना नहीं चाहते थे इसलिये उन्होंने मुखपत्ति मुखोपरि से उतार डाली अपितु यह तपागच्छ को भी अंतरंग से अच्छा नहीं जानते थे जैसे कि महात्मा श्री मजी बनाई मुखपत्ति चर्चा नामक पुस्तक में लिखते हैं कि—मेरी श्रद्धा तो श्री यशोविजय जी के साथ कभी मिले है जिनउपाध्याय जी नाम मात्र तपेगच्छ का कहीलाता था तिम मेरे को भी नाम मात्र तपेगच्छ का कहिला जीए मैंने उपाध्याय जी के अनुराग करके लोकव्यवहार मात्र समाचारी अंगीकार करी—रतनगर मध्ये सुमतविजयतथामणिविजय पासेगच्छ धारी ने हम तथा मूलचंद तथा वृद्धिचंद सेठ की धर्मशाला में वसे भाए एना उनके साथ मेरा संबंध थी प्रेम कर्म जोरे वासना वास में

इसके ऐसे अनुचित समय में इस तरह के कथन से और पूर्वोक्त कारवाई अंगीकार करने से कितने ही शहरों के लोगों को सनातन जैनमत की शुद्ध श्रद्धा प्राप्त होनी बंद् होगई क्योंकि बहुत अनजान लोगों ने विना ही समझे हठ कदाग्रह करके आत्माराम जी वगैरह के पास जाना आना बंद कर दिया इत्यादि पाठकगण ! क्या विद्वानों का यही लक्षण है कि सर्वेवकाल ही स्वइच्छानुसार वर्ताव करना जब कभी स्वकृत प्रगट होजाये तो शोक करना वाह !!! जिस जीव के पूर्वोक्त कृत्य होवें उस को सत्य वक्ता मानना क्योंकि

---

जन्म लिया विरागविण आछागुरु संजोग न मिल्या ते पाप का उदा इत्यादि कथन से सिद्ध है कि—बूटेराय जी तपगच्छ का अन्त: करण से अच्छा भी नहीं जानते थे किन्तु नाम ही तपगच्छ का रखते थे और जिनके पास तपगच्छ धारण किया था उनका स्वरूप बूटेराय जी मुखपत्ति चर्चा नामक पोथी के ५८ वें पृष्टोपरि लिखते हैं कि बाईदिक्षा लेने वाली थी ते साधा का रूपइय चढाय के पूजा करने लगी प्रथम तो रूपइय चढाइने रत्न विजयजी को पूजा करी फिर मणिविजयजीन आगे रुपैये चढाइने पूजा करी पीछे मेरेको रूपइये चढावने लगी तिवारे नित विजयजी बोल्या हमारे आगे रुपये चढावने का कुछ काम नहीं हमारे रुपया को खप न थी हम कहीन मने कर दीनो तिवारे हम सवे तहां ने ऊठ के चले आये तिनोंने बाई कू दिक्षा देके शहर में चले गये इत्यादि इस प्रकार चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धार के पृष्ट २८ वा २९ वें पर भी लिखा है ॥

पाठकगण देखिये जब मणि विजयादि संवेगी द्रव्य रखते थे और बूटेराय जी अपने आप को साधू ही नहीं मानते थे ना ही बूटेराय जी को गुरु का संयोग मिला ना ही तपागच्छ को अन्तःकरण से भला समझते थे—तो फिर भला तपागच्छिये किस तरह कह सक्ते हैं कि हमारी परम्पराय शुद्ध संयमधारियों की है ॥

जब आत्माराम जी सत्य में दृढ़ न्याय पक्षी थे तो इतना प्रतिकार क्यों करते थे जो कि उनके जीवन चरित्र से सिद्ध है ।

तब श्रीपूज्य महाराज ने अमृतसर से विहार करके भव्य जीवों के हृदय सम्यक्त्व रूपी ज्योति से प्रकाश करते हुए सम्वत् १९१४ चौमासा फीरोज़पुर में ही करदिया और पूर्वोक्त सम्वत् भर में ही अमृतसर में तीन दीक्षायें हुईं ।

जैसे कि—लाला अमीरचन्द निपालमल्ल बिहारीचन्द यह तीन ही गृहस्थ रावलपिंडी के निवासी थे। और एक ही वर्ष में लाला जीवनमल्ल जी दिल्ली के निवासी (वृद्ध आलोयणा) भाषा ग्रन्थ के कर्त्ता जोकि वैराग्य मुद्रा थे जिन को श्रीमान आचार्य रामबक्ष जी महाराज ने श्रुतविद्या का दान दिया था वह भी आत्माराम जी को मिले जिन्हों ने भी बहुत सी हित शिक्षायें आत्माराम जी को दी और कई प्रश्न भी पूछे जैसे कि—

लाला जी ने प्रश्न किया कि—महात्मा जी सूत्रों में द्वि प्रकार से धर्म प्रतिपादन किया गया है जैसे कि—मुनिधर्म १ गृहस्थ धर्म २ सो प्रतिमा जी का पूजन किस धर्म में कहा गया है। क्योंकि जैसे उक्त द्वि प्रकार के धर्म का सविस्तार उपवाई आदि सूत्रों में अर्हन्देव ने किया है इसी प्रकार किस सूत्र में अर्हन्देव ने मंदिर के बनाने की विधि प्रतिष्ठा की विधि बिंब को मुक्तिदायक बनाना इत्यादि विधि कथन करी है और ऐसा कथन करने वाला कौनसा सूत्र है या सूत्र का पाठ है ?

और जीव को अजीव मानना अजीव को जीव मानना यह मिथ्यात्व है या नहीं क्योंकि अजीव में जीव संज्ञा धारण करनी यही परम मिथ्यात्व है फिर किस सूत्र में श्री गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया है कि प्रतिमा जी के पूजन से जीव मोक्षमें चला जाता है।

फिर धर्म हिंसा में है था दया में है और भगवान् की आज्ञा अहिंसा में है या हिंसा में है ?

यदि कहोगे सूत्रपाठ व्यवच्छेद होगये हैं ? तो हम कहते हैं जो *अन्यधर्म विषय अनेक ही पाठ हैं वह व्यवच्छेद क्योंना होगये भला कोई बुद्धिमान यह बात मान सक्ता है कि सिद्धान्त के नियम तो व्यवच्छेद न होवें और नित्य नियम व्यवच्छेद होजाये सो महात्माजो उक्त बातों का शान्ति पूर्वक मुझे उत्तर दीजिये जब लाला जी ने इस प्रकार आत्माराम जी को अनेक प्रश्न पूछे तब आत्माराम जी ने एक ही मौन धारण कर लिया सत्य है उत्तर देते क्या सूत्रों में उक्त विषय का कोई भी कथन नहीं है । इसी वास्ते आत्माराम जी के जीवन चरित्र में ५२ पृष्टोपर लिखा है कि—आत्माराम जी ने लाला जीतमल्ल को अयोग्य समझ के उपेक्षा करली इत्यादि वाहजी वाह जिस क प्रश्न का उत्तर न आवे वही धर्म के अयोग्य सो इसी वास्ते लाला जी को हठधर्मी वा धर्म के अयोग्य लिखा है पाठकगण ! यह आत्माराम जी को विद्वत्ता है किन्तु श्री महाराज ने फीरोजपुर के चौमासा के पश्चात् अनेक ग्राम नगरों में धर्मोपदेश देकर १९२५ का चौमासा गुरु के जंडियाला में किया सो उक्त चौमासे में श्रावक लोगोंको ज्ञान का परम लाभ हुआ कई भव्य-जीव प्रश्न पूछ के निस्स-

---

* प्रश्न व्याकरण सूत्र वा उपासक दशांग सूत्र आवश्यकादि अनेक सूत्रों में मुनिधर्म वा गृहस्थ धर्म का पूर्ण स्वरूप प्रतिपादन किया गया है इतना ही नहीं किन्तु श्री अनुयोगद्वारजी सूत्र में आवश्यकादि अधिकार में परमत के अनेक मंदिरों के विषय में पाठ हैं । अपितु श्री चतुर्संघ को दो समयं नित्यम्प्रति षडावश्यक करन की ही आज्ञा लिखी है इसीलिये जो कहता है कि मंदिर विषय के पाठ व्यवच्छेद होगये हैं सो निकेवल स्वकपोल कल्पित कथन है ?

के लिखे पत्र से सिद्ध है भव्यगण को उक्त पत्र की नकल आगे लिख कर दिखलायेंगे अपितु जब आत्माराम जी का व्यवहार सूत्रा-नुकूल न रहा तब ही स्वामी जीवनराम जी महाराज ने आत्माराम जी को स्वगच्छ से वाह्य कर दिया तब ही आत्माराम जी रुदन करने लगे तो स्वामी जी ने कृपा करी कि अब रोने से क्या बनता है ? और दिल्ली की यह बात है कि जब दिल्ली में आत्माराम जी गये तब ही लाला जीतमल्लादि श्रावकों की भेट हुई तब वहां से विहार ही करना सूझा क्योंकि ला० जीतमल्ल से प्रथम एकबार वार्ता-लाप हो चुका था, तिस कारण से ही आत्माराम जी ने शीघ्र विहारकर दिया ? और श्रीमहाराजने भी चौमासा के पश्चात् कपूरथले की ओर विहार कर दिया फिर जालन्धर, फगवाड़ा, जेजों, टांडा इत्यादि नगरों में परोपकार कर के १९२६ का चौमासा हुशियारपुर में किया इस चौमासा में जिन भाईयों को मिथ्या भ्रम हो रहा था तिस का नाश किया अर्थात् भ्रमोच्छेदन किया किन्तु जो हठाग्रही थे तिन को प्रश्नो-त्तर करके निरुत्तर किया क्योंकि श्रीमहाराज स्वमतपरमत के परम ज्ञाता थे। सो चौमासे के पश्चात् बहुत से भव्यजीवों को सम्यक्त्व का बोध देकर १९२७ का चौमासा जालन्धर नगर में कर दिया सो चौमासा में परमोद्योत हुआ।

फिर श्रीमहाराज चौमासे के पश्चात् विचरते हुए जगरावां शहर में पधार गये फिर अन्यदा समय जगरावां से विहार कर के श्रीमहाराज किशनपुरे को जारहे थे दैवयोग्य से आत्माराम जी मार्ग में ही मिलगये पुनः श्रीमहाराज के चरण कमल पकड़ लिये मुख से कहने लगे कि-श्रीपूज्य महाराज जी मैं तो आप का दास हुं आपने मेरे ऊपर इतना उपकार किया है कि जो ऋण मैं भव भव में नहीं देसक्ता हुं क्योंकि आपने मेरे गुरु महाराज को दीक्षित किया और मुझे ज्ञान पढ़ाया।

तब श्रीमहाराज कहने लगे कि हे आत्माराम तू मिथ्यात्व में प्रवेश करके क्यों जन्म को बिगाड़ता है क्या तूने उत्सूत्र भाषी के फल को नहीं सुना है कि जो अनन्तानन्त पर्यंत उत्सूत्र के भाषी को सम्यक्त्व की भी प्राप्ति नहीं होती ।

और जो तेरे मन में शंकायें हैं तो तू निर्णय करले क्योंकि सूत्रों में यह पुनः २ कहा है कि जो अजीव को जीव मानता है वही मिथ्या दृष्टि है सो जब तू एक पाषाण के बिंब को अर्हन् मानता है तो भला फिर तू मिथ्यात्व मार्ग से कैसे विमुक्त हो सकता है ।

और फिर तू लोगों के पास कहता है कि पूज्य जी मेरी रोटी बंद करते हैं ।

मित्रवर ! हमको अंतराय देने की क्या आवश्यकता है किन्तु जैसे तू कर्म करता है इन कर्मों से तो यही सिद्ध होता है तुझ को मनुष्य भव पाना ही दुर्लभ हो जायगा तात्पर्य यह है कि तू शंकाओं को प्रकाश कर और हम उन शंकाओं का समाधान करेंगे ।

अपितु वक्रता से वर्ताव मत कर इत्यादि जब श्रीमहाराज कथन कर चुके तब आत्मारामजी कुछ भी उत्तर न देसके अपितु नम्रता करके अपने मार्ग चलते भये ।

सत्य है हठ धर्मी पुरुष को नम्रता का धार्य है क्योंकि मायायुक्त से वर्ताव करना आत्मारामजी के जीवन चरित्र से ही सिद्ध है देखिये श्रीयुत चरित्र पृष्ठ ५१—जब आत्माराम जी अमृतसर में विश्नचंद्रादि साधुओं को मिले तब विश्नचंद्रजी ने कहा कि महाराज जी मन से तो हम सारे ही आप के साथ मिले हुये हैं क्योंकि आपने शुद्ध सनातन जैनमत का यथार्थ स्वरूप दिखलाके हमारे ऊपर जो उपकार किया है इस का बदला भव भव में भी नहीं देसकते हैं परंतु क्या करें अपना मतलब सिद्ध करने के वास्ते ऊपर ऊपर से ढूंढाई रखते हैं यदि इतनी भी ढूंढाई न रखें तो पूज्य जी नाराज हो जाते हैं और

उनके नाराज होने से अपना कार्य सिद्ध होना मुश्किल है इत्यादि प्रिय पाठकगण ! उक्त लख को स्वयं पढकर विचारें कि आत्मारामजी वा विश्नचंद्रादि साधुओं का अन्तरंग वा बाह्य विचार कैसा विचार नीच है और फिर विश्नचंद्रादि साधु जगरावा से विहार करके अनुक्रमे अम्बाला छावनी में पहुचे फिर अपने हाथो से एक (चिट्ठी) पत्र लिख कर अम्बाला छावनी से अम्बाला शहर में मार्फत लाला मलागियां मव्ल, आलुमल्ल की श्रीपूज्य महाराज जो को भेजा जोकि १९२८ ज्येष्ठ कृष्ण १४ का लिखा हुआ सो पाठकों के जानने वास्ते हम उस पत्र की नकल यहां उद्धृत करते हैं :—

श्री वीतरागायनमः

स्वस्ति श्रीमत सुभस्थान विराजमान श्री श्री श्री परम पुज्य परम दयालू परम कृपालू परम संवेगी चारित्र निधी दया के सागर खिमा के भंडार सूरवीर धीर गंभोर अनेक गुनकारी वराजमान ॥

**कागज थोड़ा गुनघणा, सोपे कह्या न जाय ।**
**सागर में तो जल घना, गागर में न समाय ॥**

श्री श्री श्री परम पुज्य जी महाराज हमारे सिर के छत्र समान मस्तक के मुकट समान अनेक गुनकरी विराजमान स्वामी जी महाराज पुज्यचंदजी महाराज के चरणा विच बंदणा नमस्कार वाचनो श्री स्वामी जी विश्नचंदजी महाराज चरणा चाकर गुलाम हुकमे की वंदना नमस्कार बहुत २ करके बंचनी चरणा विच सीसलगा हुआ वांचना ठाने ७ की जुदी २ वंदना नमस्कार बहुत २ करके वाचनो सबका ध्यान आपके चरणा विच लगराहा हयगा स्वामी विश्नचंदजी का चरणा के गुलाम का हुकमे का ध्यान हरदम आपके चरणा विच लगा रहेंदा हैगा आपने हमारी तरफ सेति किसे बातकी चिंता सोचन करना नहीं हम को तो आपके चरणा का वड़ा अधार हयगा घन

उचित होगा जिस दिन आपका दर्शन होवेगा हमारे वो बहुत अवसाव लग रही हमगी श्री श्री श्री १००८ श्री श्री श्री पुज्य श्री महाराज के चरणों विष विरमचंद की हुकमचंद को थबना नमस्कार तिपुतो के पाठ से १००८ वार पुनर २ वावणी सुखसाता बहुत २ करके पुछजो मागे मेरी तथा हुकमचंद की मरजी आपके चरणो में चौमास करने की हैगी सो यहां सेम होवे तो हुकमचंद कहे के मरा चित पूज्य श्री महाराज के पास चौमासा करण का है सो आप जोग से स्याल सहर विष विराजमान होवेगे सो हमारे उपर कृपा आप करके महर दिष्टी करके रस दिखावे देणो हम इस ठीकाणे हैं हमारे चित की वृति आप के चरण्या म बहु रहे है मप इस बात में बिल कुछ फरक नहीं समजणा मबफपसीवमेर तथा हुकमचंद भाईकी पूज्यजी महाराज के चरण विष चतुरमासा कर के सेवा करनी आप खातर जमा रखणी आपके तामेदार है चरणो के चाकर है इसीतरा जानना घणु क्या लीखु श्री केवली महाराज जानते है हमारा तो आपने बड़ा उपकार किया है सो हमारे मन में यहि है आप के प स रहे २ शास्त्र विचारे सुमध्यान आप का वर्तते हमारी मनसा पुरी हुये सो मबके तो दुरका मुकमा है फर मेरा फरमावोगे *इसतरा होवगो इसम फरक नहीं जानणा यह बात मतलबकरण स लिखी है आप बड़े गंभीर हो उत्तम हो आपके गुणा का पार नहीं है सो आप करके साता की खबर जरुर भेजनी कृपा करके जरूर जरूर आवणि सुखसाता की खबर जल्दी कृपा कर के मावयां सेती छपा देणी हमारा स्याल बहुत जरूरत हएगा—इति —और इस पत्र के द्वितीय पृष्ठो परि वैश्य लोगों की ही (बही)

---

*शोक है यह पत्र अतिजीर्ण होने से इस स्थान के वर्ण ही उड़ गये हैं पत्र भी छिन्न भिन्न हो रहा है किन्तु इस स्थान में ऐसे शब्द प्रतीत होते हैं कि मेंनु आप की आज्ञा भेजोगे तथा जिस तरा फुरमावोगे—इत्यादि—

नियम् पत्रादि में हिंदी लिखने में आती है वह लिखी हुई है उस में लिखा है कि—अम्बाला छावनी का पता और पत्र भेजा लाला मसानियामल्ल, आलूमल्ल की मार्फत श्री पूज्य महाराज को भेजा १९२८ ज्येष्ट कृष्ण १४—इत्यादि—और आत्मारामजी के जीवन चरित्र के ५७ वें पृष्टो पर लिखा है कि-कितने दिनों पीछे अमरसिंहजी की तरफ से पत्र ऊपर पत्र आने से लाचार हो कर श्रीविश्नचंदजी लुधी-आने से विहार करके अम्बाला शहर में जा चौमासा रहे इत्यादि—प्रिय पाठक वृन्द उक्त पत्र विश्नचन्द वा हुकमचन्द का लिखा हुआ है पत्र में दोनों प्रकार के वर्ण विद्यामान हैं तथा दोनों ने ही पत्र को वर्णों से अंकित किया है। अपितु पत्र अशुद्ध* बहुत हो है सो उक्त पत्र के पढ़ने से निश्चय हो जाता है कि यह महात्मा जी व्याकरण के अप-ठत थे अपितु संवेगी लोक इनकी विद्या की महान् स्तुति करते हैं सो ठीक है—यथा—

---

*प्रिय मित्रवरो इस सारे पत्र की सर्व ५० पंक्तिये हैं प्रत्येक पंक्ति में अशुद्धियों की भरमार है यथा प्रथम पंक्ति में तीन अशुद्धिये हैं यथा—मत् के स्थानो परिमत ऐसे लिखा है वा शुभ स्थान के स्थान में सुभ स्थान लिखते हैं अथवा पूज्य शब्द को पुज्य लिखा है तथा पंक्ति २ कृपालु शब्द को क्रपालु निधि शब्द को निधी पं० ३ क्षमाको, षिमा, पं० ४ कागज़ को कागद में को मे पूज्य शब्द को पुज्य महाराज शब्द को महाराज ७-८-९-१०—इत्यादि पंक्तियों में स्यमान, मुगट, षुष चद नमस्कार, हवगा, हुंगी, इत्यादि अनेक प्रकार की अशुद्धिये हैं प्रगट होता है कि महात्माजी सस्कृत हिंदी वा उर्दू भाषा के विद्वान् बनने की इच्छा से लिखना चाहते थे परन्तु उक्त भाषाओं को ही उपालम्भ है जो बिना पढे महात्माजी के हृदय में प्रवेश न कर गई अर्थात् पत्र अशुद्धियों से अङ्कित कर दिया है और पद योजना का तो कहनाही क्या है धन्य है संवेगमतके उपाध्यायजी को किन्तु आचार्यजी की विद्या का स्वरूप मध्यजम ३४ के वर्ष के चौमासे में वर्णन करेंगे।

उष्ट्राणां विवाहहेतु रासभास्तत्रगायकाः ।
परस्परप्रशंसन्ति अहोरूप महोध्वनि ॥

इसी ही न्याय से लोक महात्मा जी की स्तुति करते हैं। इसवर्ष पुनः आत्माराम जी के जीवन चरित्र में लिखा है कि पूज्य जी के वारम्वार पत्र आने से लाचार होकर विदलचन्दादि साधु लुधियाना से विहार करके अम्बाला चौमासा आ रहे इत्यादि पाठक गण! यह कैसी अयोक्तिक बात है कि श्रीपूज्य महाराज के पत्रों से अम्बाला में चौमासा हुआ कथा विश्नचंद जी के पत्र से सिद्ध होता है कि श्री महाराज विश्नचन्द्र को पत्र भेजते थे कदापि नहीं ! सो अब विश्नचन्द जी के लिखे हुए पत्र का भी विचार कीजिये कि --

यदि उक्त पत्र विश्नचन्द जी ने अन्तःकरण से ही लिखा होवेगा और पत्र के लिखे अनुसार हो भाव होंगे तब आ आत्माराम जी के जीवनचरित्र में लिखा है कि—

अगरावां में आत्माराम जी को विश्नचंदादि साधु मिले तब विश्नचन्द्र जी ने कहा आत्मारामजी को हम तो अंदर से सदा ही भाव से मिले हुए हैं बाहर से जुदाई रखते हैं इत्यादि ।

यदि यह कथन विश्नचन्द्र जी का ही है तब विश्नचन्द्र जी ने आत्माराम जी के ही साथ प्रपञ्च किया !

अथवा विश्नचन्द्र जी ने ऐसा न कहा हो तब जन्मचरित्र के लिखने वाले ने अनुचित लिखा है ! तथा अन्तःकरण से अथवा आत्माराम जी के साथ ही मिले हुए थे तब अम्बाला श्रावकों से पत्र लिखवा कर श्रीपूज्य महाराज की सेवा में भेजने की क्या आवश्यकता थी ! सो हे प्रायगण !

जो पुरुष माया में ही मलीन हैं क्या वे धर्म के परीक्षक होसक्ते हैं कदापि नहीं !

सो इत्यादि कुत्सित विधि विश्नचन्द्र जी ने आत्माराम जी से सीखी क्योंकि आत्माराम जी ने विश्नचन्द्रादि साधुओं को भी अपने ही समान कर लिया ?

अपितु जब श्रीपूज्य महाराज जी को विश्नचन्द्र जी का लिखा हुआ पत्र मिला तब श्रीपूज्य महाराज ने द्रव्य क्षेत्र कालभाव को देख कर उक्त पत्र का किञ्चित् भी उत्तर नहीं दिया पुनः श्रीमहाराज ने १९२८ का चौमासा जीरे नगर में कर दिया ?

चतुर्मास में बहुत से भव्यजनों के संशय छेदन किये, अपितु बहुल संसारियों के लिये क्या उपाय बन सक्ता है जब के गौशालाजी वा जमालीजी को भगवान् भी शिक्षा करने से असमर्थ होगये ?

सो चौमासा में बहुत ही धर्मोद्यत हुआ फिर श्रीपूज्य महाराज जी चौमासा के पश्चात् अनुक्रम से विहार करते हुए मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में लाला सावसिंह ओसवाल जौहरी की बैठक में जगरावां शहर में विराजमान होगये । और श्रीस्वामी विलासराय जी महाराज श्री स्वामी पूज्य रामबक्षजी महाराज श्री स्वामी पूज्य मोती राम जी महाराज श्री स्वामी हीरालाल जी महाराज श्री स्वामी पं० धर्मचन्द्रजी महाराज श्रीस्वामी तपस्वी रामचन्द्र जी महाराज इत्यादि मुनि भी महाराजके सग थे और श्रीस्वामी रत्नचन्द्रजी महाराज स्वामी ज्वाहरलाल जी श्री स्वामी हीरालाल जी महाराज इत्यादि पांच साधु मारवाड़ी भी श्री पूज्य महाराज जी के दर्शनार्थ जगरावां शहर में ही आये हुए थे। और तब ही विश्नचन्द्रादि साधु भी अम्बाला शहरसे विहार करके लुधियाने में आगये थे।

जब इन्हों ने सुना कि जगरावां शहर में श्रीपूज्य महाराज वा अन्य बहुत से साधु एकत्व हुए हैं तब इन के चित्त में यह निश्चय हुआ कि जो हम सूत्रों से विरुद्धाचर्ण करते हैं सो श्रीपूज्य महाराज भली प्रकार से जान गये हैं अब हम को गच्छ से बाह्य करने के लिये ही एकत्व हुए हैं ॥

सत्य है प्रतिहारक पुरुष अपनी मायाको स्मृति करके आप ही मध पाता है,' इसलिये जो हमारे पास सूत्र हैं यह सब भाई छोन लेंगे इस वास्ते पुस्तकादि उपकर्ण लुधियाना में ही रख कर फिर भी पूज्य महाराज के दर्शन करें तब सर्व पुस्तकादि लुधियाना में ही रख कर विहार करके अगरावा शहर में ही श्रीपूज्य महाराज के दर्शन आ किये ।

फिर नमस्कारादि करने लगे तब श्रीपूज्य महाराजजी ने सब साधु एकत्र करके कहा कि मैं इन विश्नचन्द्रादि पूज्य साधुओं को अपने गच्छ से पृथक् करता हूं क्योंकि इन्हों का न तो चारित्र ही शुद्ध रहा है नाही दर्शन शुद्ध है इसी वास्ते यह विचारे छल करते हैं अपने दोष ढांपने के लिये असत्य बोलते हैं तब श्री विलासरायजी महाराजजी वा मारवाड़ी मुनियों ने कहा कि सड़े हुए ताम्बूल (पान)को रखना किसी प्रकार भी अच्छा नहीं होता इसी प्र कार यह विश्नचन्द्रादि भी असत्य बोलते हैं वा छल करते हैं और नाही इन्हों का चारित्र शुद्ध है नाही दर्शन सो इसी वास्ते इन को गच्छ से शीघ्र ही बाहिर करना चाहिये ॥

तब विश्नचन्द्रादि भी बहुत ही नम्रता करने लगे और महंत सिरों को हाथपै लाने लगे पुनः नमन करते हुए गद्गद्‌ वाणी बोलने लगे, और पुनः पुनः यह कहते हुए वन्दन करते थे कि हे श्रीपूज्य महाराजजी अब हमारा अपराध क्षमा करो फिर जो कुछ आप कृपा करेंगे सोई हम मानेंगे हम मन गये हैं आप अब अवश्य ही हमारा अपराध क्षमा करें ॥

तब श्री पूज्य महाराज ने कृपा करी कि तुम बड़े ही प्रपञ्ची हो क्योंकि तुम लुधियाना में क्यों पुस्तकादि छोड़ कर आये हो इस लिये सिद्ध होता है कि तुम्हारे मन में छल ह अब में तुम को कदापि

गच्छ में नहीं रखूंगा । क्योंकि तुम *असत्य ही लिखते हो । असत्यही बोलते हो। उस काल में ही लाला टीकमराय, लाला राधामल्ल, जंगोरीमल्ल, गणपतिराय, शंकरदास, छज्जुमल्ल, घोसुमल्ल इत्यादि भाई भी स्थित थे। सो उन्हों ने भी श्रीपूज्य महाराजजी से बहुतही विज्ञप्ति करी कि श्री पूज्य महाराज जी अब इन पर क्षमा करो क्योंकि यह अब भूल गये हैं। तब श्री पूज्य महाराज जी ने कृपा करी कि हे भाइयो यह विश्नचन्द्रादि महान् छल कर रहे हैं और इन का चारित्र वा दर्शन कलंकित होगया है और भी इन का सर्व आचार श्रीपूज्य महाराज ने जब भाईयों को सुनाया तब सर्व भाई कहने लगे कि हे महाराजजी अब इन को नितान्त मत रखो उसी ही समय श्री महाराज ने विश्नचन्द्रादि गण को अपने गच्छ से बाह्य करदिया तब वह लाला सावसिंह की बैठक से नीचे उतार गये जिनके नाम यह हैं । यथा :—

विश्नचन्द्र जी १, हुक्मचन्द्र जी २, निहालचन्द्र जी३, निधानमल्ल जी ४,सलामनरायजी ५, तुलसीरामजी ६,घनैयामल्लजी ७,चम्पालाल जी ८, कल्याणचन्दजी ९, हाकमचन्दजी १०, गुरदित्तामल्ल जी, ११, रलारामजी १२,जब यह जगरांवां से दो वा तीनकोस के अनुमान चले गये तब इनके मनमें न जाने क्या बात आई फिर यह जगरावांमें ही आ गये पुनः श्रीमहाराज जी से रुदन करते हुए विज्ञप्ति करने लगे कि आप हमारा अपराध क्षमा करें और जो इच्छा हो वही प्रायश्चित दे देवें हम आपके दास हैं अपितु यह कथन भी इनका छल ही का था क्योंकि इनकी इच्छा और भी कतिपय भव्य जीवों को सन्मार्ग से

---

* बहुत से पत्र विश्नचन्द्रादि साधुओं ने अर्हन् की शपथें खा कर श्रीमहाराज को लिखकर दिये थे ।

शोक है प्रमाद से वह पत्र छिन्न भिन्न होगये ।

पराङ्मुख करने की थी। किन्तु श्रीपूज्य महाराज जी ने इनके कपटके कथन को फिर भी न स्वीकार किया और श्रीमहाराज ने फिर भी यही कृपा की कि हम को तुम्हारे वचनों की प्रतीत नहीं है और असत्यवादी दीक्षा के भी अयोग्य होते हैं सो हमने सूत्रानुसार काम किया है अब श्रीपूज्य महाराज ने इनको गच्छ में रखना नाही स्वीकार किया तब यह निराश्रय होकर लुधियाना में ही आगये। जिस काल में आत्माराम जी जालन्धर में थे तब विश्नचन्द्रादि साधु आत्मा राम जी को जालन्धर में ही जा मिले फिर इन्होंने सोचा कि बाहर करने के लिये कोई उपाय करना चाहिये जो कि आत्मारामजीके ही जीवन चरित्र से लिया है जैसे कि जीवन चरित्र के पृष्ठ ५७ में पर आत्मा राम जी कहते हैं कि यदि तुम जो इस देश में विचरना होवे तो और जगा कर शहरों शहर श्रावक और ग्रामों ग्राममें फिर के शुद्ध मजान का उपदेश करके श्रावक समुदाय बनाओ क्योंकि बिना श्रावक समुदाय के इस पञ्चमकाल में संयम का पालना कठिन है इत्यादि फिर वे कहते हैं कि —

माया सबही क्षेत्रों में पैर रखने जितना ठिकाना हमने कर रखा है इस देश को हम कदापि न छोड़ेंगे इत्यादि कथन से बाहर होपन उपाय विचार कर लिया किन्तु तब से भी पूज्य महाराज ने इनको अपने गच्छ से बाहर किया तद् पश्चात् माया कोई भी भव्य इनके असत्यो, पदेश में नहीं फंसा किन्तु जो प्रथम ही अपने अनुकूल कर रखे थे वह भी कितनेक कुमार्ग में आगये। अपितु जालन्धर में विश्नचन्द्रादि मूर्त्तिपूजक मिथ्याज्ञान फैलाने वास्ते उद्यत हुए॥

फिर यह अंमृतसर में पहुंच गये और चौमासा भी यहां ही किया किन्तु उस काल महताब शाह भागमल शाह सोहनलाल गणेशदास निहालशाह तोलेशाह इत्यादि भाईयों के सन्मुख जिन आगम प्रकाशित करने लगे तब किसी ने भी इनके असत्योपदेश को न स्वीकार किया।

अपितु लाला रणजीतसिंह ने जमू में पधार कर विश्नचंद्रादि के साथ प्रश्नोत्तर कर के तिन को निरुत्तर किया सो उस काल का स्वरूप विश्नचद जी ही जानते थे इस ही प्रकार प्रायः अन्य नगरों में भी इनके साथ यही वर्त्ताव होता रहा । और श्रीपूज्य महाराज के गच्छ में रहने वाले श्री वीरशासन के मुनि इन की स्वकपोल कल्पित बातों को असत्य करके दिखाने लगे वा*साध्वियें भी यथाशक्ति इनके असत्योपदेश की सूत्रों द्वारा समालोचना करके भव्यजीवों को दिखाने लगीं अपितु श्री महाराज ने १९२९ का चौमासा पटियाला नगर में ही कर दिया ।

तब ही लाला वक्षीराम नाभे वाले ला० शिशुराम (श्रीकृष्णदास) पटियाले वाले इत्यादि बहुतसे सद्गृहस्थोंन स्वः सम्मत्यनुकूल पंडित शंभूनाथ को एक पत्र देकर प्रायः पंजाब देश में यह प्रगट कर दिया कि यह विश्नचद्रादि वेषधारी जिनाज्ञा से विरुद्ध उपदेश करते हैं और विरुद्ध ही इन का चारित्र होरहा है सो यदि यह किसी भी भव्य को मिथ्याउपदेश देवें सो वह उपदेश मानने योग्य नहीं है तथा किसी के मन में कोई भी शंका हो वह सूत्रों द्वारा निर्णय कर लेवे और इन का आचार व्यवहार जैन मतानुकूल नहीं रहा है जब ऐसे कथन को पण्डित जी ने नगर नगर ग्राम ग्राम में प्रसिद्ध कर दिया तब लोगों ने उक्त ब्राह्मण को यह उत्तर दिया कि पंडित जी हमने तो प्रथम ही इस बात को विचारा हुआ है सो कइयों ने पत्रोपरि-लिखितादि भी कर दी ॥

---

* श्रीमती आर्या पार्वती जी ने भी संवेगियों को बहुत ही सुन्दर उत्तर दिये हैं कई स्थान पर इन को पराजय भी किया है ज्ञानदीपिकादि कई सुन्दर पुस्तक भी लिखे हैं देखो इन का जीवन चरित्र उर्दू भाषा में जो छपा हुआ है ॥

अब पाठकगण विचारें कि यदि आत्मारामजी का वा विज-यानंदसूरि ग्रन्थ लिखियों का सत्योपदेश था फिर क्यों न किसी को सत्य पथ पर लाये किन्तु जिन को प्रथम ही अपने मतानुसार कर रखा था उनको हठ त्यागना दुष्कर होगया । अब बतलाइये आत्मारामजी ने चार वर्णों में से किस को कौन धर्मी बनाया ?

फिर श्रीपूज्य महाराज चौमासा के पश्चात देश में अपने सत्योपदेश द्वारा भ्रमोच्छेदन करते हुए विचरने लगे । और इसी प्रकार श्री स्वामी जीवनरामजी महाराज ने भी * बूढ़मल नामक ग्राम में आत्मारामजी को अपने गच्छ से पृथक् किया तब आत्मारामजी बहुत ही रुदन करने लगे तब श्री जीवनरामजी महाराज ने कृपा करी कि अब क्यों इतना रोता है तुमको तो भव भव में रुदन करना पड़ेगा अपितु मैं तुम को अब गच्छ में कदापि न रक्खूंगा। तब आत्मारामजी ने स्वार्थतत्परतापूर्वक यह काम किया कि एक पत्र लिखकर श्री स्वामी जीवनरामजी महाराज को देदिया । और साथ ही यह कह दिया कि यदि कोई आप से पूछे कि आत्माराम को आपने क्यों गच्छ से बाहर कर दिया तब आपने यह मेरा लिखा हुआ पत्र दिखला देना । स्वामी जी महाराज महान् भद्र पुरुष थे उन्हों ने इस बात को स्वीकार करके आत्मारामजी से पत्र ले लिया अब हम भी उस पत्र को भद्र भव्य जीवों के दिखाने वास्ते इस स्थान पर लिख देते हैं यथा पत्रम् ।

श्री जीवनरामजी की आज्ञा आराधना द्वादशांग की करके मोक्ष न जावे ८ और जो श्रीनंदीजी में सूत्रों के नाम हैं सो सूत्र भगवान

---

* यह बूढ़मल ग्राम पंजाब देश के फीरोजपुर जिले में जीरे नगर से पांच कोश के अंतर पर बसता है।

के बनाय हुई नही आचार्य के बनाय हुए हैं सो सर्व सच्चे नही आपनी मत कल्पना से भेल संभेल करके वणाय हैं।

और जो वर्त्तमान में ग्यारा अंग हैं इण में भी भेल सभेल करया हुआ है यह श्रद्धान श्री जीवनराम का ॥

बत्तीसूत्र पइंताली सूत्र चौरासी सूत्र तथा १४००० हजार ए सर्व मत कल्पना के वणाय हुय हैं भगवान की वाणी नहीं।

आराधना द्वादशांगी करके मोक्ष जावे है और श्रीनंदीजी में जितने सूत्रा के नाम हैं सो सर्व सच्चे हैं। और जो पिछले आचार्य्य प्रमाणी का के वाणाय हुय जो ग्रंथ हैं सो झूठे नहीं हैं यह श्रद्धान आत्माराम की है इति।

यह पत्र लिखकर आत्मारामजी ने श्रीस्वामी जीवनराम जी महाराज को देदिया और श्रीमहाराज ने आत्माराम को गच्छ से भिन्न करके १९२९ का चौमासा फिरोजपुरमें ही करदिया पाठकगण आत्मा-रामजी की विद्याको भी देख लेवें। सो अनुमान कार्तिक मासमें लाला रणजीतसिंह जी भी फीरोजपुर में ही आगये तब श्री जीवनराम जी महाराज ने वह पत्र आत्मारामजी का लिखा हुआ श्रीमान् श्रावकजी को दिखला दिया तो उस ने कहा कि आत्माराम जी ने आप के साथ प्रपञ्च किया है क्योंकि जो कुछ आत्मारामजी ने आपको श्रद्धा विषय लेख लिखा है तो क्या वह लेख आप को सम्मत्त है तब स्वामी जी महाराज ने कृपा करी कि मुझे तो उक्त लेख प्रमाण नहीं है और नाहीं मेरा उक्त कथनानुसार श्रद्धान है तब श्रीमान् ने कहा कि जो कुछ आपका मन्तव्यामतव्य है सो वह इस पत्र पर ही लिखें क्योंकि जो इस पत्र को पढ़ेगा उसको आपका श्रद्धान वा आत्माराम जी का श्रद्धान विदित हो जावेगा तब स्वामी जी ने उक्त पत्रोपरि ही यह लेख लिख दिया ॥ देखिये :—

१२ सूत्र परमुख सर्वमत बरधमा के बनाय हुए हैं व ऊपर की लिखत मुक्ता कर लिखी सो नहीं परमाण विचलमाण वि य सरदना पद्यण करि हो ते सब मिच्छामिदु २ बोले सं १९६१ कार्तकद०१३-१२ भगवी भगवान केवलीजी के वचने सर्व सहत प्रमाण जो यथवर देवादेव युत केवली के कहे सर्व सासअखार १ परमाण है ! हिंसा धर्म का सासम परमान नहीं द० जीवणराम साधू के फीरोजपुर में।

प्रियवरो ! जैसे इस पत्र में लेख हैं वैसे ही हमने भी बिना दिन छापे हैं ! अब देखिये अब श्री जीवनराम जी महाराज स्वयम् लिखते हैं कि —

ऊपर की लिखत मुक्ता कर लिखी इत्यादि अब पाठकगण ! स्वयम् विचारेंगे कि आत्मारामजी के जीवन चरित्र में लिखा है कि जीवन राम जी को क्षमाखिया अब पाठकगण विचारें कि श्रीजीवनरामजी को किसने क्षमाया प्रियवरो ! अवश्य ही कहना पड़ेगा आत्मारामजी ने।

अपितु श्रीपूज्य महाराज नगर १ ग्राम २ से मिथ्या मत का नाश करते हुए जालंधर नगर में पधार गये।

सो यहां ही १९३ आषाढ शुद्ध ५ मी को स्वामी हरनामदास जी वा स्वामी गोविंदरामजी वा स्वामी वधावाराम जी को दीक्षा दे करके १९३० का चोमासा हुशियारपुर में जा किया।

सो बहुत से भव्य जीवों को मिथ्या मार्ग से मुक्त करके जिन धर्म का उद्योत करते हुए चोमासे के पश्चात् अनुक्रम से विहार करके लुधियाना में पधार गये तब लुधियाना में लाला मथरामल्ल लाला मथमीमल्ल लाला जइमल्ल लाला गारीमल्ल इत्यादि सुश्रावकों ने शुद्ध जैनधर्म में दृढ़ होकर जनपद का बहुत ही उद्योत किया फिर श्रीपूज्य महाराज ने मलेरकोटला शहर की ओर विहार कर दिया।

क्योंकि जिस समय मलेर शहर में तपस्वी सेवकरामजी महा

राज ने तपस्या की हुई थी जब श्री महाराज भदौड़ शहर में पधारे तब भाईयों की अतीव विज्ञप्तिके प्रयोग से १९३१ का चौमासा भदौड़ में ही कर दिया सो चौमासा में धर्मोद्योत बहुत ही हुआ चौमासे के पश्चात् श्री महाराज विचरते हुए भव्य जनों के संशय छेदन करते हुओं ने १९३२ *का चौमासा नाभा नगर में कर दिया सो नामे नगर के वासी ओसवाल वा वैश्य लोगों ने धर्मोद्योत बहुत ही किया और इस चौमासा में लोगों ने ज्ञान भी अतीव सीखा।

अब पाठक जनों को यह आकांक्षा भी अवश्य होवेगी कि जब श्री पूज्य महाराज ने विशनचंद्रादिओं को अपने गच्छ से भिन्न किया था और श्री जीवनराम जी महाराज ने आत्मारामजी को स्वःगच्छ से पृथक् किया था तो फिर वह किस महात्माके शिष्य बनें और उस महात्मा के पूर्वज महात्मा कैसे थे सो पाठकों के संदेह छेदनार्थं हम इस बात के निर्णयार्थं स्वःलेखनी को आरूढ़ करते हैं ॥

प्रिय मित्रवरो! जब आत्मारामजी वा विशनचंद्रादि सर्वद्रव्य लिङ्गी सुधर्मगच्छ से पृथक् किये गये फिर इन का अनुचित उपदेश प्रायः किसी भी भव्यने न ग्रहण किया किन्तु इन को ही लोक गुरु हीन कहने लग गये फिर इन्होंने अनुमान १९३२ में भगवान् वर्द्धमान स्वामी का लिङ्ग परिवर्तन कर दिया और शहर अहमदाबाद में पहोंच गये फिर वहां पर वुद्धि विजय को गुरु धारण किया जोकि पूर्व सुधर्म गच्छ से निकलकर तपागच्छमें गया था जिसका नाम बूटेरायजी था।

ध्यान रहे रलारामजी ? गुरुदित्तामल्ल जी ? तो इनसे प्रथमही पृथक् हो चुके थे।

किन्तु जो अहमदाबाद में पहोंच गये थे उन्होंने तपागच्छ का वासक्षेप लिया था।

---

* श्रीपूज्य महाराज ने इसी सम्वत्सर में गच्छ को उन्नत्यर्थं समयानुकूल ३२ अङ्क लिखे थे जोकि अद्यापि पर्य्यन्त गच्छ में प्रचलित हैं।

अब हम पीताम्बर मतका शिथिलत्व पूर्वोक्त चतुर्थस्तुति निर्णय शंकोद्धार से लिखते हैं

सज्जन जनो ! चतुर्थ स्तुतिनिर्णय शंकोद्धार प्रस्तावना पृष्ठ ५४ पंक्ति १४ वीं से देखिये —

हवे तमारे श्रावक लोकों ने विचार करवो जोईये के आत्मारामजी ओनी चोथी पीढी थी चोथी पीढी वाला बन्यो परिग्रह असंयम तो सर्व संघमां प्रसिद्धछेने जैन शास्त्रोमा अभिप्राय थी तो एमनी सर्व पेढीयो असंयमी सिद्ध थायछे केमके आत्मारामजी आनंद विजय जी ए पोताना बनावेला पुस्तकमा गुरु नामावलि लखीछे ते पहवीज ।
सत्य विजय १ कपूर विजय २ क्षमा विजय ३ जिन विजय ४ उत्तम विजय ५ पद्मविजय ६ रूप विजय ७ कीर्ति विजय ८ कस्तुर विजय ९ मणि विजय १० बुद्धि विजय ११ मुक्ति विजय १२ तस लघुभ्राता आनंद विजय एसर्व पेढीयो जो गच्छाचार पयन्ना प्रमुखग्रंथों ना अभिप्रायथी अने जैन लिंग थी विरुद्ध लिंगधारी छे केमके ते ग्रंथोमां पडिर्यांबर तथा पिन प्रमुख रंगेला वस्त्र धारवा वालाने गुरु गच्छ आचार्य आज्ञा रहित जन लिंग थी विरोधि कह्याछेने प्रथम एमनी पेढीमां जो सत्य विजय जीए ज्यासे गुरु आज्ञा विना पडिर्यांबर करवा ने स्वार पछो केटलेक पेढी वाला पकाविया करवो नेपछीतो फक्त रंगेला केशरी या करवो त धर्मनाममां वर्ते छे तथा जैन ग्रंथमां तो आचार्य उपाध्यायनी निश्रायविना साधुकह्यानथीने आत्मारामजी पोते तथा तेमनी पेढी वाला जो तपागच्छनु नामधरावीने श्री तपागच्छना आचार्यों ने शिथिल असंयमी जाणी तेमनी आज्ञामां प्रवर्तता न थी ने गणीप्रमुख पदवी पोतानी मेले धारण करेछे पण श्री अंगचूलिया प्रमुख जैन सूत्रोमा गुरुगच्छ आचार्य विना पोतानी मेले गणी प्रमुख पदवी धारवा वाला ने महा मिथ्यात्व दृष्टि दूरारापक पाखंड मतियों ने दृष्टिये पण देख वा वर्ज्यांछ ने आत्मारामजी आनंद विजय ओनी

गुरु परं परा मां अद्यापि जुधी कोई आचार्य उपाध्याय थया नथी तो पणकोई संयमो गुरुगच्छा चार्य पासे उपसपदा चार्य पद्वासक्षेप कराया विना अर्थात् नवीदिक्षाने आचार्य पद वासक्षेप कराव्या विना अनेपालीताणामां कोई संयमी आचार्य ने संघे आचार्य पदवी दीधाविना पोताना दृष्टिरागी वाणियाउ ना दीधेलो आचार्य पदस्वीकार करी पोताना। करेला प्रश्नोत्तरातम अथना ३१४ मा पृष्टमां छपा व्युंछेके पालीताने में * चार प्रकार महा संघके समुदाय ने आचार्य पद् दत्त।

---

* चर्चा चन्द्रोदय भागतीसरेके पृष्ट ३० पंक्ति ५ पर लिखा है कि प्रश्न ? तुम आत्माराम जीके नाम के साथ में सूरीश्वरपद देख कर क्यों जलते हो अनुमान होता है तुमको उनसे कुछ द्वेष भाव है।

उत्तर—मित्रवर हम जलते भी नहीं हैं और हमको उन से कुछ द्वेषभाव भी नहीं परतु दरिद्रो का नाम लक्ष्मीपति रखना युक्त नहीं उपहास्य होता है।

प्रश्न—क्या आत्माराम जी को सकल श्री संघने सूरिपद नहीं दिया है (उत्तर) सवत् ( १९४३ ) में आत्मारामजी ने पालिताणे में चौमासाकिया और कार्त्तिक शुक्ल १५ को शत्रुजय तीर्थ की जात्रा को अनेक श्रावक आते ही हैं । उनमेंसे दो चार शहर के रहने वालों ने ओ आत्माराम जीके रागी थे) आत्मारामजी से कहा हम आपको आचार्य पदवी देना चाहते हैं आत्मारामजीने न मालूम क्या लाभ जान कर इसवात को स्वीकार करलिया और मनमें फूलगये इतना भो नहीं कहा कि ? हमारे वडे गुरुभाई गणि जो श्री मूलचंदजी महाराज तथा श्री वृद्धिचद जी महाराज से इसवात में सलाह और आज्ञा लेना चाहिये दूसरे दिन श्रावकों ने शेठ नरसिंह केशव जी को धर्म शाला में एक मकान सजा कर आत्माराम जीको पाट पर वैठाय दिया और कितनेक श्रावकों ने इकठ्ठा हो कर संभाषण किया कि आजकल भारत

नाम विजयानंद सूरि अपर प्रसिद्ध नाम आत्माराम मुनि इत्यादि पोताना आचार्य पदप्रापी आत्मारामजी ने अटक निगोदना कारा गारमां पडवानो इच्छा कराया न होइये ॥

मारे आत्माराम आना दितने पास्न तमने कहिये छीयके जो

---

मुनि आचार्य पदसे हीन हो गई अपकी सलाह हो तो श्री आत्माराम जीको उस पदसे विभूषित करें कितनेक श्रावकोंने तर्क की कि महाराज. पर आचार्य पद का वासक्षेप कौन करेगा। वासक्षेप करने वाला साधु होना चाहिये जो महाराज से दीक्षा में बड़ा होवे आचार्य पद मिले पीछे महाराज जी गणि जी श्री मूलचन्द्र जी महाराज तथा वृद्धि चंद्रजी महाराज को वंदना करेंगे या नहीं ? करेंगे तो आचार्य पद की न्यूनता होगी और नहीं करेंगे तो परस्पर विरोध होवेगा इस बात का सोच था कितनेक श्रावकों ने कहा कि सोच किया है जो कार्य करने को आपलोग इकट्ठे हुवे हैं उसको करना ही मुनासिब है बस इतने में अटक और बड़ोदे के कितनेक श्रावकों ने आत्मा-राम जी के मोग्य श्रावक गिन जाते हैं ? उन्होंने एकदम कहदिया कि चोको भी सूरीश्वर महाराज की जय न किसी से वासक्षेप किया न कुछ किया अनुष्ठान किया आत्माराम जी उस दिन से अपने आपको सूरिमानने लगे शिष्यवर्ग से कहदिया आजसे हम को सूरि लिखा करो हम कहते हैं जंगल में मोर नाचा किसने देखा ! इत्यादि कथन उक्त पुस्तक में है अपितु उक्त पुस्तक साधुमार्गियों की लिखित नहीं है शोक है आत्माराम जी के जीवन चरित्र में लिखा है कि १५००० सहस्र मनुष्य में सूरिपद आत्माराम जी ने प्राप्त किया सो हम पूछते हैं। आचार्य पद साधु देसकते हैं या गृहस्थी और क्या विधि क्या वर्णन है और किस गच्छ के आत्माराम जी आचार्य बनाये गये क्योंकि आत्माराम जी के गुरु के श्वेत वस्त्र थे और आत्माराम जी के पीत, अर्थात् पीले वस्त्र इत्यर्थ ॥

आत्माराम जी भवभीरू होय तो जेम अमेथी जैन शास्त्रोंना न्यायथी त्रीजी चौथी पेढी वाला श्री प्रमोद विजय जी ना गुरू ने संजमी। जाणी तथा साधू समाचारी पोतानी परंपरामां सर्वथा उच्छिन्न न थई तो पण श्रीगुरू आज्ञाए क्रियावन्त संयमी गुरू नो हाथे दिक्षा प्रमूख साधू समाचारी तथा गुरू परपराए आवेली महासंघ समक्ष श्री गुरू दीधेली आचार्य पदवीना धारक श्री विजेयराजेन्द्र सूरिजी ने सयमी जाणीतेमनो पासेउपसपद् अर्थात् नवी दीक्षा ग्रहण करी क्रिया उद्धार करयो तेम एमने पण सयमी मुनीनी पासे चारित्रोप संपत् अर्थात् दीक्षा लेवी जोइए केम के फरी दीक्षा लेवी थी एक तो कुलिंगपना नु कलंकटली अभीमान वेग लोथई जशे ने बीजुं पोते साधू नथी तो पणअमे साधू छीए एवुं लोकोने कहे वु पडे छे॥

तद रूप मिथ्या भाषण दुषण थी वची जसे ? अने त्रीजु जे कोई भोला श्रावकएम ने साधु करीने माने छे ते श्रावको नु मिथ्यात्व पण वेगलुं थई जशे इत्यादि वहु गुण उत्पन्न थशे माटे जो आत्माराम जी आनदविजयजी आत्मार्थी छे तोए अमारुं कहे वु परमोपकाररूप जाणी ने अंगीकार करशे तथा आचार्यपद लेवानी वांछा होय तो आत्माराम जी ने उचित छे के प्रथम कोई परंपरागत सयमी आचार्य देखीने तथा जंवु मम परंपराए पोसह सालाए पमाय चइसाए के महाणु भागसु रिणोगण पोडग धारगा सयमे सुवइता ? इत्यादि श्रीअग चूलिया प्रमुख जैन सुत्रोनी आज्ञाना धारक श्रीसुधर्म परंपराए पोषधसाला प्रमुख परिग्रह प्रमाद छोडीने अर्थात् शिथिला चारपणुं मुकी ने क्रिया उद्धारना करवा वाला एवा कोई महाणु भागसूरि आचार्य जो इतेमनी पासे दीक्षा लेई आचार्य पदधारण करे तो आगमनो भंग रूप दुषण थी वचीजाय अनेएम ने आचार्यमानवा वाला श्रावकोनु मिथ्यात्व पण वेग लुंथइजय ने नरकनिगोद रूपी कारागारनी भोजमान वानो भयपण टली जाय केमके अनाचारीने साधू तथा अनाचार्यने आचार्यमान वो एम

होवु मिथ्यात्व छे वली परंपरागत संयमी गुरु आचारजनी पासे चारित्रोप संपदा आर्यपद अर्थात् दीक्षा अने आचार्य पद लीधाविना कदापि जैन शास्त्रमां साधू पणु तथा आचार्य पणु मान्य करेल न थी ॥

माटे संयमी गुरु तथा आचार्यनी पास संयम लईने साधू पणु तथा आचार्य पणु आत्माराम जी ने धारण करेल जोइयेने पूर्वोक्त रीते थी साधू पणु तथा आचार्य पणुं धारण नहीं करयो तो जैनमत ना शास्त्रों नी आज्ञा थाकी एम ने जैनमत ना साधू तथा आचार्य केवी रीते परमाण करी अंगीकार करशो ? इत्यादि तथा एज ही पुस्तक के पृष्ठ २९ पर लिखा है कि पहिले आत्मारामजी पाणकपंथी ढुंढिया था भेष छोडी स्वलिंग श्रीमहावीर स्वामिना यति ना श्वेत मानो वेष कपडानो छोडीने अन्यलिंग पीताम्बर भगविना ग्रहण करयो परन्तु कोई संयमी गुरु नीपासे चारित्रोपसंपत् अर्थात् फरीने दिक्षा लीधी नहीं अने जैनो पासे दिक्षा ग्रहण कर थानु कहे छे तेपमना गुरु पास मुख कहता कि मैं संयमी नहीं हूं ! तथा पीताम्बर मणिविजयादिक नी गुरु परंपराथी बहु पेढीओ थी संयम रहित हती तो फरी असंयती नी पासे दीक्षा लेईने उप संपद ग्रहण करवीए जिनमत ना शास्त्रोथी विरुद्ध इत्यादि तथा पृष्ठ २९ परापरि लिखा है कि आत्मके सोभाग विजयजी तो जेम श्रीरूप विजयजीए रूपसी पदमनी नामनो ढुंढियो बनावी तेम सोभाग विजयनी पण ढुंढियो बनावना तथा असंयम प्रवृत्ति श्री गुर्जर मारवाड देशमां सर्व संयमा प्रसिद्ध छे इत्यादि तथा पृष्ठ ३१ पर लिखा है कि श्री बूटेरायजीए सर्वसंवेगी नामधारी ने कुगुरु समजी तेमनो लिंग त्यागन करी श्वेत कपडा धारण करी इत्यादि तथा पृष्ठ २७ पर लिखा है कि आत्माराम जी मानविजयजी तो विद्वान् पणानो अभिमान धारण करी ढुंढकमत मांथी नीकलीने कुलिंग पण धारण करयपण कोई संयमीगुरु देख्यो तेमनी पासे उपसंपद लीधी दिक्षालीधी नहीं इत्यादि ॥

पाठकगण! उक्त लेख आत्माराम जी के ही गच्छका है सो आपस्वयं विचार करें कि आत्माराम जी श्री भगवान् वर्द्धमान स्वामी का प्रतिपादन किया साधु धर्म वा लिङ्ग छोड़ करके परिग्रह धारियों के जा शिष्य बनें जो कि संयम से रहित धन से विभूषित हुंडियां चलाते थे पाठकगण क्या जाने आत्मारामजी ने इनके धन को ही देख कर यह विचार लिया हो कि यही भगवन् के शासन के हैं।

क्योंकि इनके पास धन बहुत है सो भगवान् भी संसार पक्ष में राजपुत्र होनें से बड़े ही धनाढ्य थे शोक!!! शेष समीक्षा इनके मत की पाठकों पर छोड़ते हैं।

क्योंकि अधिक समालोचना में विस्तार का भय है सो यह तो पाठकगण जान ही गये होंगे कि आत्माराम जो संयमवृतो त्याग कर परिग्रह धारियों के शिष्य हुए और न तो कोई उनके गच्छ में आचार्य ही हुआ है नाही उपाध्याय सत्य है जब संयम ही नहीं है तो फिर आचार्य कहां से होवे।

किन्तु श्री पूज्य महाराज का १९३२ का चौमासा नाभे शहर में महानंद से पूर्ण होगया श्री महाराज चौमासा के पश्चात् विहार कर के देश में जय विजय करने लगे।

फिर श्री पूज्य महाराज ने मालेरकोटला, रामपुरा, लुधियाना फलौर, फगवाडा, जालंधर, कपूरथला, गुरुका जंडियालादि नगरों में धर्मोद्योत करके लाला हरनामदास संतलाल ओसवाल की बैठक में १९३३ का चौमास कर दिया।

चौमासा में धार्मिक कार्य्य बहुत से हुए और चौमासा में ही चार पुरुष धर्म के प्रकाशक पूर्वक्षयोपशमता के कारण से वैराग्य भाव को प्राप्त होते हुए अमृतसर में ही आगये जैसे कि—श्री दूलोरायजी, १ श्रीशिवदयालजी, २ श्री सोहनलालजी, ३ श्री गणपतिराय

को ४ सो श्री दूलोरायजी पसरूर के वासी और श्री शिवदयालजी रोहतास के वसने हारे और श्रीसोहनलालजी संमराले के वसने वाले श्री गणपतिरायजी पसरूर के रहने वाले जिन्होंने श्रीपूज्य महाराज के पास दीक्षा के वास्ते विज्ञप्ति की श्री महाराज ने विज्ञप्ति को स्वीकार करके १९३३ मार्ग शीर्ष शुक्ला पञ्चमी चंद्रवार के दिन चारों को ही दीक्षित किया।

फिर श्रीमहाराजने दूलोरायजी * को श्री खूबचन्द्रजी महाराज के शिष्यकर दिये और श्रीशिवदयालजी महाराज वा श्रीसोहनलाल जी श्री धर्मचन्द्र जी महाराज के शिष्य कर दिये श्रीगणपतिरायजी महाराज श्री मोतीरामजी महाराज के शिष्य किये गये।

जिन में से श्री सोहनलाल जी महाराज ने विद्याभ्यसन करके थोड़े ही काल में संवेगमत का पराजय किया स्वामी श्री महाराज को मुक्ति के सन्मुख आतमारामजी खड़े नहीं होते थे और जिन्हों ने बहुत से भव्यजीवों की मिथ्यात्व को नष्ट करके पुनः उनको सम्यक्त्व में स्थिर किया है आज दिन सुधर्म स्वामीजी के ८१ वें पट्टोपरि विराजमान हैं सूर्य समान प्रकाश कर रहे हैं।

---

*प्रथम श्रीदूलोराय जी को श्री पूज्य मोतीरामजी महाराज की निश्राय किया था अपितु श्री महाराज ने स्वीकार नहीं किया फिर श्री खूबचंद्रजी महाराज का शिष्य किया गया।

†श्री भगवान वर्द्धमान स्वामी के ८१ पट्टोपरि विराजमान श्री पूज्य सोहनलालजी महाराज हैं जिन्होंने संवेगमत का शास्त्र द्वारा कई बार पराजय किया है जिसका स्वरूप आगे लिखा जायगा।

अपितु श्री पज्य महाराज (श्री सोहनलालजी) का जन्म सम्वत् १९०६माघ मास कृष्ण पक्ष प्रतिपदा स्यालकोट के जिलामें संभड़्याल नामक नगर के लाला मथुरादासजी की धर्म पत्नी माई लक्ष्मीदेवी के कुक्षसे हुआ है देखिये!जन्म कुंडली तथा आचार्य वर्य श्रीपूज्य सोहन लालजी महाराजका जन्म लग्न ? श्री विक्रमाब्द १९०६ पोह मास धनार्क प्रविष्टा १८ माघ कृष्णा प्रतिपदा रविवासरे ऐन्द्र योग पुनर्वसु नक्षत्रे वृश्चिक लग्नोदये ओसवंशः ।

## श्रीपूज्य सोहनलालजी महाराज की जन्म कुण्डली ।
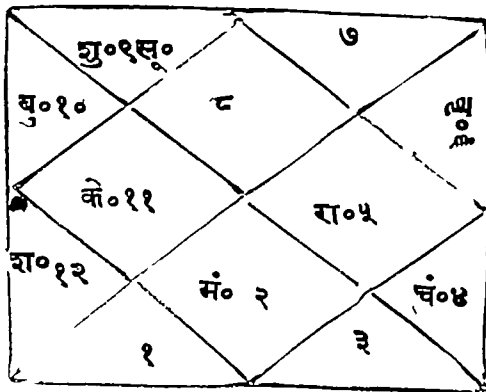
श्री पूज्य महाराज परमशान्ति मुद्रा हैं श्री गणपतिराय जी महाराज भी उक्त गच्छ में गणावच्छेदिक वा स्थविर पदसे विभूषित हो रहे हैं जो महान् दीर्घ दर्शी हैं और श्री संघ के परम हितैषी हैं स्वामीजीका जन्म पसरूर शहर जिला स्यालकोट श्रीविक्रमाब्द१९०६ भाद्र पद कृष्णा पक्ष तृतीय मंगल वार के दिन लाला गुरुदासमल्ल श्रीमाल की धर्म पत्नी माई गोर्या की कुक्षसे हुआ है स्वामीजी के जन्म लग्नके ग्रह देखने से यह स्वयमेवही सिद्ध हो जाता है कि स्वामीजी महाराज परम हितैषी हैं ।

## अथ श्रीगणावच्छेदिक गणपतिराय जी महाराज की जन्म कुण्डली ।

विक्रमाब्द १९०१ माघ कृष्ण पक्ष तृतीया भौमवासरः।

सो यह कथन प्रसंग से यहां लिखा गया है ।

किन्तु दीक्षा देकर श्री पूज्य महाराज ने ग्राम नगरों में धर्मोपदेश दे कर लुधियाना मालेरकोटला बरनाला रोपड़ इत्यादि नगरों में विचर के १९३४ का चौमासा नालागढ़ में आ किया सो चौमासे में धर्मोद्योत बहुत हुआ ।

पाठकों को स्मृति होगा के हमने पूर्व लिखा था कि १९३४ के चौमासा में आत्मारामजी का वर्णन करना सिद्ध करेंगे सो पाठक वृन्द ! ध्यान से पढ़ें कि १९३५ का चौमासा आत्मारामजी का जोधपुर में था और श्रीस्वामी जीवनरामजी महाराज का चौमासा तब ही बंगदेश के मालेर कोटला नामक नगर में था तब आत्माराम जी ने जोधपुर से अपने हाथ से एक पत्र लिख कर स्वामी जीवनराम जी महाराज को मालेर कोटला में भेजा सो उस पत्र की नकल यथातथ्य भव्य जीवों के दिखाने वास्ते लिखता हूं ? और जिसके पढ़ने से पाठकों का आत्माराम जी की विद्या बुद्धि भली प्रकार से विदित हो जायेगी ।

## अथ पत्रम् ।

स्वस्ति श्री भाद्दा कोटे साधू जी श्री श्री श्री श्री श्री श्री जीवणरामजी योग लिषो जोधपुर सेती आतमाराम ने सुषसाता षिमावणा संवछरी सबधी बहुत वहुत करके वाचनी आगे आपने तो मेरे कूं भूलाय दीया है परन्तु मेरे मन में तो आप घडी एक भूलते नहीं है कारण एह हे जो वाल अवस्थाथी आपने मेरी पालना करी अने पढाया जो विद्या मेरे कुं आइ हे सो सर्व आपका उपगार है अने अब जो अनुमाने लाषां श्रावक मेरी सेवा करते है तथा १४ साधू मेरे साथ है एसर्व आप ही का उपागार है सो आप कूं मिलणे के बहुत अभिलाषा लग रही है सो आप के गुण तो मेरे कूं सर्व मालूम हैं मुह से कहे नही जाते हे ग्राम चूडचक में आप से घणी अरज करी थी के मेरे कू आप दुर न करो परन्तु आप तो गुरु के दरजे थे सो मेरा क्या जोर चलता था दुसरा मने तो आपका अविनय कदेबी नही कीया अने आज दिन तक अपना मूढा थो कदे आप को निंदा नही करी वलके आपके भद्रिक स्वभाव का तथा ब्रह्मचर्य का तथा तपस्या की महिमाघणे लोकां आगल करता हूं परन्तु जद आप याद आउदे हो तथा दिल भरआंउदा है आषां में पाणी आजांदा है सो मेरे कूं वडा दाह होता है सो तो कहां लगलिषू सो अब आपने कृपा करके मेरे कूं अपना मूख कमल का दर्शन करावणा सो उठे चौमासे में दिल्ली की तर्फ विहार करके आउंगा महीने माघ तक सो आपने वी बांगर के गामा में विहार करके पधारणा ।

सो आपका मेल हो जावेगा अने जो मैं समुद्र के अंतलग रचना देखी है तथा जीर्ण ताड पत्रा के भंडार देखे है सो सब आप कू सुणाऊंगा मेरा जैसा राग आप के उपर था अैसाही राग अब है मै तो अच्छी तर जाणता हूं जो आप परभव सुधारणे के वास्ते ऊठेहो

अने आप कू मलूम ही है जितने मत अब जग माम के हो रहे है आगे आप कू किसी श्रावक के मुलाहजा से मेरे से मिलना बंद नहीं करना आप को मेरेसे न्यारे रहते ही पमेरे कूं बड़ा दुख है मेरी मरजी यह है को आप की सेवा करूं सदा पास रहु पुस्तक मेरे क हलने लिखे है सो मिलनी से बाहिर है ।

श्रावक तो अनुमाने १०००००० दस लाख सेवा करते है अने साधू मेरे पास है सो पढ़े विनय वान है परन्तु एक आपका विजोग है यही मेरे कू दुख है जैसे जैसे क्षेत्र है जिसमें७ ००हजार श्रावको के घर है परमेश्वर को तरे साधू कू मानते हैं सोबको ५०० हजार गुजरात में होवेंगे परंतु साधू मगवान के योग हैं साधू त्यागी अनुमान ७ वा ८ है साध्वीया १५० के अनुमान है सो हमारी ए मरजी है जो आपके साथ फेर सर्व संघ अने तीर्थ जिन के ऊपर २५ ० मंदिर हु अने २० से वर्ष के बने हुए मंदिर अब तक कायम है ए सर्व वस्तु का हाल आप मिलोगे जब कहुया सर्व साधु आप कू चाहते है अने मेरे साधू जैनेन्द्र व्याकरण वगेरे घणे २ शास्त्र भणे है ए सर्व आप जब मिलोगे तब देखोगे ए चिट्ठी मैंने पूर्व रागथी लिखी है।

दुजा कोर मकसद नहीं इतने दिन जो चिट्ठी नहीं लीखी सो आपने मना कर दीया था। परन्तु मैं कहांतक सबर करु इस वास्ते लिखी है सो इसका समाचार सर्व पाछा लिखणा ।

जोधपुर में मानचंद पारख की दुकान ऊपर चिट्ठी लिखी सं० १९३५ कार्तिक वदि ८ दस्तखत आत्माराम के ।

अथ किंचित् इस पत्र की समालोचना करके सम्यक्त्वी को दिखाता हूं।

प्रियपाठकवृन्द ! जो आत्माराम जी के जीवन चरित्र के ४१वें पृष्ठोपरि लिखा है कि–आत्माराम जी ने १९२१ में मीमांसा में सार स्वत, चन्द्रिका, कोष, अलंकार न्याय काव्यादि ग्रंथ पढे । सो पाठक

गण स्वय ही विचार करेंगे कि इतने विद्वान् का ऐसा नियम विरुद्ध पत्र होसक्ता है कदापि नहीं इससे स्वतः ही सिद्ध होगया कि आत्माराम जी ने व्याकरण को ही कलङ्कित किया तथा नाही आत्मारामजी सुंदर पद रचना करके शब्द लावद्ध लिखना ही जानतेथे जैसेकि उनके लिखे पत्र से स्पष्ट सिद्ध है तथा लिखिने की शैली इस प्रकार से ग्रहण करते हैं कि—परंतु जद आप याद आउदो हो तदा दिल भर आंउदा है आषां में पाणी आजादा है सो मेरे को बड़ा दाह होता है सो तो कहां लिखूं। *इत्यादि मित्रवरो क्या यह व्याकरण के विद्वानों की भाषा है क्योंकि उक्त लेख से सिद्ध होता है कि आत्माराम जी को व्याकरण का नितान्तम् बोध नहीं था यदि बोध होता तो उक्त पत्र विभक्ति तिङंन कृदन्त प्रत्यय समासादि से विरुद्ध क्यों लिखते तथा व्याकरण का यदि सज्ञा प्रकरण भी देखा होता तो वर्णों के स्थान तो ज्ञात होजाते जेसे कि व्याकरण के संज्ञा प्रकरण में लिखा है कि—

**अकुहविसर्जनीय जिव्हामूलीयानां कण्ठः तथा ऋटुरषाणां मूर्द्धा ॥**

अर्थात् अष्टादश प्रकार का अवर्ण पुनः कवर्ग जैसे कि—क ख ग घ ङ, और विसर्जनीय जिह्वा मूलीया इनका कण्ठ स्थान है और ऋवर्ण के अष्टादश भेद टवर्ग जैसे कि—टठडढण र, ष, इनका मूर्द्धन स्थान है ?

मित्रवरो उक्त पत्र में आत्माराम जो ने प्रायः कण्ठ स्थान के वर्णों के स्थानोपरि मूर्धस्थान के वर्णों को ही लिखा है जेसे कि—आषां में पाणी आजांदा है,(कृशलग लिपू )इत्यादि सो क्या यह आत्मराम जो ने अपनी बुद्धि का परिचय नहीं दिखाया है अवश्य दिखाया है ?

---

* वाह ! ! ! कैसी सुन्दर काव्य आत्माराम जी ने लिखी है जिस से हेमचन्दादि महानाचार्यों की काव्यें लज्जित होरही हैं ॥

फिर संवेगी लोग कहते हैं कि—आत्मारामजी ने ढूंढक मत मनःकल्पित जान के त्याग दिया ! किन्तु ! महात्मा जी अपने पत्र में लिखते हैं कि—आपके गुण तो मेरे को सर्व मालूम हैं मुह से कहे नहीं जाते याम कइबक्त मैं आप से अर्जी अरज करी थी कि मेरे को आप दूर न करो परन्तु आप तो गुरु के दरजे के थे सो मेरा क्या जोर चलता इत्यादि। पाठकगण ! आप स्वयं विचार करें कि इस लेख से क्या सिद्ध होसकता है या क्यों यह कह सकते हैं ! कि आत्मा राम जी ने श्री स्वामी जीवनराम जी महाराज को छोड़ दिया वा ढूंढक मत को मनःकल्पित जान करके त्याग दिया !

किन्तु जब आत्मारामजी का दर्शन चारित्र शुद्ध न रहा तो गच्छ में भी रखना अयोग्य था इसीवास्ते स्वामीजी ने आत्मारामजी को गच्छ से निकाल दिया फिर लिखा है कि—मैंने कभी भी आपका अविनय नहीं किया किन्तु स्तुति करता रहता हूं—इत्यादि—

जब वीरशासन के मुनियों को असत्य कटुकवाक्य प्रदान किये हैं तो क्या यह अविनय नहीं है अवश्य है तथा सम्यक्त्वशल्योद्धार नामक ग्रंथ को पढ़कर देख लीजिये (जो कि महात्मा जी का रचा हुआ है) आद्य से अंतपर्यन्त पठन करते हुए आपको सत्य मृदु वाक्य कहीं भी दृष्टि गोचर नहीं आवेंगे ! हां—ढूंढिये चमार मुसलमान, निन्दक दुर्गति के पड़ने वाले इत्यादि शब्दों की वर्षा अच्छी की हुई है ! अर्थात् नमस्कार है॥

फिर और भी देखिये आत्मारामजी के कथन में सत्यता भी प्रतीत नहीं होती है जैसे कि आत्मारामजी स्वपत्र में लिखते हैं कि जो मैं समुद्र के अंत का रचना देखो है तथा आर्य क्षेत्रों के भंडार देखे हैं सो सब आप को दिखाऊंगा इत्यादि पाठकवृन्द आत्मा रामजी कौनसे समुद्र के अंत का रचना देखकर आयेहैं—क्या लवण समुद्र या कालोदधि—तथा स्वयंभूरमण समुद्र को क्या यह अनु

चित लेख नहीं है अवश्य है क्योंकि सांप्रतम् काल के शोधकजन तो यह कहते हैं कि–इसमें कोई अन्त नहीं मिला ॥

फिर एक यह भी बात है कि–आत्माराम जो १९३२ सम्वत् म पजाब देश से विहार करके अमदावाद में चौमास जा रहे फिर १९३३ का चौमास भावनगर में किया १९३४ का चौमास जोधपुर में किया तो क्या यह तीनही नगर समुद्र के अन्त में वसने वाले हैं॥

हां यदि किसी खालका नाम आत्माराम जी ने समुद्र कल्पन करलिया हो तब तो न्यारी बात है क्योंकि जब आत्माराम जी ने एक अचित द्रव्य को अर्हन मान लिया है तो भला समुद्र की तो क्या ही बात है ॥

क्योंकि ओर किसी प्रकार भी आत्माराम जी का समुद्र तक रचना देखना सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि भारत वर्ष के सूत्रों में ३२००० हजार देश लिखे हैं किन्तु आत्मारामजी के जीवन चरित्र में केवल पजाब, गुजरात, मारवाड, मालवा, इत्यादि देशोंके ही नाम लिखे हैं नतु अन्य देशों के नाम ॥ सो शोक है ! ऐसे लिखने पर फिर लिखा है कि मैं अच्छी तरह जानता हुं जो आप परभव सुधारणे के वास्ते ऊठे हो तथा मेरा जेसा राग आप के उपर था वेसा ही राग अब है इत्यादि मित्र वरो ! जब राग की न्यूनता भी न हुई स्वामी जी परलोक वास्ते उत्थित हुए भी निश्चित होगया ॥

तो फिर ढूंढिया शब्द ग्रहण करके वीरशासन के मुनियों की व्यर्थ निन्दा करके पत्र काले क्यों किये हैं ॥

अपितु जो किये हैं इस से आत्माराम जी ने अपनी बुद्धि का परिचय दिखा दिया है ॥

पुनः लिखा है कि मेरी मरजी यह है जो आपकी सेवा करूं सदा पास रहुं पुस्तक मेरे कु इतने मिले है जो गिणती से बाहिर है श्रावकतो अनुमाने दश १०००००० लाख सेवा करते है इत्यादि ॥

प्रियगण ! जो सेवा वाक्य में अन्तःकरण से लिखा होवेगा तो सिद्ध होता है कि सवेग मत वा तपागच्छ आत्माराम जी को प्रिय नहीं लगा होयगा दूंढेरायजीवत। फिर लिखा है कि पुस्तक मेरेकू इतने मिले हैं जो गिनती से बाहिर हैं, सो गणना से बाहिर तो असंख्य वा अनन्त का शब्द है तो क्या आत्मारामजी को असंख्य पुस्तक मिल गये थे ॥

किन्तु आजकल तो प्रायः महान् २ पुस्तकालय की भी लिस्ट विद्यमान है जैसे जैन हितैषी नामक मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ है कि अमुक नामक सुप्रसिद्ध नगर में एक महा पुस्तकालय है जिस के पुस्तक अनुक्रम से रक्खे जावें तो ४२ वा ४३ मील के स्थान में रखे जा सके हैं ॥

देखिये ! इतना महत् पुस्तकालय भी गणना से बाहिर न हुआ तथा जैन सूत्रों में सब से महान् दृष्टिवाद माना है अपितु जिस के भी संख्याते ही पर्व लिखे हैं ! तो भला आत्माराम जी को गणना से बाहिर पुस्तक कहां से मिल गये ! भला यदि कल्पना कर भी लेवें कि आत्माराम जी को इतने पुस्तक मिलगये थे जो कि गणना से बाहिर ही थे ॥

तो फिर भी पूज्य श्री महाराज व सूत्र वा श्री जीवनराम जी महाराज के सूत्र बिना आज्ञा क्यों लेगये थे ॥

तथा फिर भी यह सूत्र नहीं दिये तो क्या उक्त पुस्तकों को [illegible] बनाना था वा दीमक ॥

फिर लिखा है कि १००००००० हम आज्ञ श्रावक मेरी सेवा करते हैं यह भी लेखनचातुर्य मात्र ही है क्योंकि प्रथम तो यह लेख अहंकार का लक्षण है आपि साधु पद से विरुद्ध है फिर यह लेख इसलिये कल्पना करके रचना है क्योंकि जैन इतिहास नाम बनारसीदास एम ए० का बनाया हुआ जिसके प्रथम पत्र पर लिखा है कि १२ लाख

३४ सहस्र १०० एकसो ४८ सर्व जैन हैं इसीप्रकार भारतमित्र नामक पत्र में भी प्रकाशित होचुका है ॥

तथा किसी २ तारीख में जैन १५ लाख भी लिखे हैं सो वर्तमान काल में जैनमत की तीन शाखें हैं जैसे कि श्वेताम्बर जैन १, श्वेताम्बर मूर्त्तिपूजक जैन २, दिगंबरजैन ३; श्वेताम्बरमूर्ति पूजक जैनों की शाखा ही एक पीताम्बर जैन हैं ॥

सो सर्व जैनों में पांच लाख तो अनुमान श्रीश्वेताम्बर स्थानक वासी जैन हैं; शेषदिगंवर श्वेताम्बर जैन हैं अब विचारने की बात है कि जब पीताम्बर जैन ही आत्माराम जी के लिखे ऽनुसार हैं ही नहीं, तो भला सेवा की तो क्या ही आशा है तथा श्री श्रमण भगवत् वर्द्धमान स्वामीके श्रावक १००००० लाख उनसठ सहस्र ही कल्प सूत्र में लिखे हैं सो आत्माराम जी का कथन असमंजस है फिर लिखा है कि साधू भगवानके शासनके थोडे हैं साधू त्यागी अनुमान ७०वा८०साधवीयां एक सौ पचास १५० के अनुमान हैं। मित्रवरो जैसे आत्माराम जी त्यागी वैरागी थे तैसे हो वह ७०,८० साधु १५० साध्वियें होंगी धन्य है ऐसे२ परीक्षकों को पुनः मंदिर विषय लेख लिखा है वह भी पानसर के तीर्थवत् ही होवेगा ॥

पुनः देखिये आत्मारामजी को जब श्रीजीवनराम जी महाराजने स्वगच्छ से भिन्न किया था। फिर आत्मारामजी को किसी भी पत्र द्वारा नहीं चाहा ॥

किन्तु आत्माराम जी लिखते हैं कि—इतने दिन जो चीठी नही लीखी सो आपने मना कर दिया था परंतु मैं कहालग सबर करू इत्यादि पाठकगण—देखिये आत्माराम जी के लेख को परंतु स्वामी जीवनराम जी महाराज ने इस पत्र का भी कोई भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। सो उक्त पत्र से पाठकों को आत्माराम जी की विद्या बुद्धि विवेक सत्य सर्व ज्ञात होगया होवेगा।

अपितु श्रीपूज्य महाराज का जो चौमासा अम्बाला से पूर्व होगया फिर श्रीमहाराज देश में परोपकार करते हुओं ने लोगों के अतीव आग्रह से १९३५ का चौमासा नाभा में किया पाठकों को ज्ञात हो १९३८ का चौमासा आत्माराम जी का लुधियाने में था। किन्तु लुधियाने में आत्माराम जी ज्वर से भयभीत होते हुए रेल गाडी में आरूढ़ हो कर चौमासा में ही अम्बाले में आ रहे थे ।

अपितु आत्माराम जी के जीवन चरित्र में लिखा है कि—जब आत्माराम जी अम्बाला में गये तब विचारते हैं ।

मैं कहां आगया हूं क्या मुझे कोई स्वप्न आया है या कोई इन्द्रजाल हो रहा है या मुझे भ्रम हो रहा है इत्यादि अनेक हास्यमई वचन लिखे हैं । सो पाठकगण आत्माराम जी के स्वभाव को तो जानते ही हैं ।

और श्रीपूज्य महाराजने नाभा नगर में जैनधर्म का परमोद्योत किया पुनः श्री महाराज ने एक ज्ञानदीपिका नामक महान ग्रन्थ भी निर्माण किया जिस में अनेक सूत्रों के प्रमाणों द्वारा भगवान की आज्ञा दया में सिद्ध करके सम्यक्त्व को पुष्टता दी है फिर चतुर्मास के पश्चात् श्री पूज्य महाराज ने बहुत से भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर १९३६का चौमासा लुधियाना में किया। सो लुधियाने में बहुत ही धर्मोद्योत हुआ अपितु लाला अमीरमल्ल, लाला मथुरामल्ल, लाला अड़ूमल्ल, मीरोमल्ल लाला जमनादास लाला खैरसैन लाला पुन्नो मल्ल लाला बिहारीचंद इत्यादि भाईयों से धर्म की प्रभावना बहुत की सो चौमासे के पश्चात् श्री महाराज अनेक ग्राम नगरों में धर्मोपदेश करते हुए अमृतसर में पधारे तब श्रीमान लाला हरनामदास सोनदास साहब की बैठक में विराजमान होगये तब प्रति दिन धर्म ध्यान की वृद्धि होने लगी सैंकड़ों लोग दर्शन करने को आने लगे ।

तब ही आत्माराम जी विश्नचंद्रादि संवेगी साधु भी अमृतसर में ही आगये ! किन्तु विश्नचंद्रादि संवेगियों ने कहला भेजा कि ! हमने भी श्री पूज्य महाराज के दर्शन करने हैं सो हमको दर्शन करने की आज्ञा मिलनी चाहिये ।

तब श्री पूज्य महाराज ने कृपा करीकि—जैसे उनकी इच्छा हो ! तब ही विश्नचद्रादि सवेगी साधु श्रीपूज्य महाराज के दर्शनार्थ लाला हुग्नामदास, संतलाल जी बैठक में ही आगये इच्छ मि खमासमणो इत्यादि पाठ पढ़ के स्थित होगये पुन: प्रेम की बातें करने लगे तब श्री पूज्य महाराज ने कृपा करीकि—विश्नचदजी क्या देखा ! तब विश्नचदजी कहने लगे ! हे महाराज जी सिद्धाचल जी देखे ! तथा अनेक मन्दिर देखे हैं तब श्रीमहाराजजी ने कहा कि—क्या कोई अढाई द्वीप में ऐसा स्थान है कि—जहां कोई भी सिद्ध न हुआ हो ! क्योंकि अब तो वह स्थान ऐसे हैं जैसे किसी शेठ की दुकान चलती है तब अनेक लोक शेठ जीके पास आते हैं व्यापार करते हैं जब वह आपण उठाई जाती है या शेठ उस दुकान को छोड़ जाता है वह आपण गिर पड़ती है फिर वह व्यापारी जन वहां पर नहीं आते हैं ।

इसी प्रकार सिद्धाचलादि पर्वत् हैं ! क्योंकि जब मुनि उन पर्वतों पर साक्षात् विद्यमान थे तब अनेक गृहस्थ वा जिज्ञासु जन वहां जाया करते थे और ज्ञान दर्शन चारित्र का लाभ उठाते थे ! बतलाओ अब क्या है वहां पर ! तब श्री सोहनलाल जी महाराज ने श्री पूज्य महाराज से विज्ञप्ति करी कि—मुझे आज्ञा होवे तो मैं इनसे कुछ वार्त्ता करूं ॥

तब श्री पूज्य महाराज जी ने श्री स्वामी सोहनलाल जी महाराज को आज्ञा देदी ॥

आज्ञा पाते ही श्री स्वामी सोहनलाल जी महाराज ने विश्नचन्द्रादि तपागच्छियों को निम्नलिखित प्रश्न किये ॥

१ आप लोग प्रतिमा जी की स्थापना ८४ मानते हैं कहना चाहिये अतिशय प्रतिमा की कितनी हैं ॥

जैसे कि अर्हत देव की जन्म अतिशय १ दीक्षा के पश्चात् जो अतिशय प्रगट होती हैं वा केवल ज्ञान के पीछे अतिशय प्रादुर्भूत हैं सर्व का वर्णन पृथक् २ है ऐसे ही प्रतिमा जी की बतलाइये ॥

२ भगवत् की आज्ञा दया में है या हिंसा में यदि हिंसा में कहोगे तो नवकोटी प्रत्याख्यान कैसे रह सकता है जेकर दया में आज्ञा है तब आप का वर्णन सूत्रानुसार नहीं है ॥

३ जब आप लोग भविष्यत काल में मोक्ष होने वाले जीवों को नमोत्थुणं के पाठ से वन्दना करते हैं तब जिन मंदिर में शिवलिंग वा श्रीकृष्णजी की प्रतिमा क्यों नहीं *प्रतिष्ठित की जाती हैं क्योंकि शिवजी को आप के मत में अव्रति सम्यक दृष्टि श्रावक माना गया है।

४ जब द्वारका जी भस्म हुई थी तब द्वारका में जिन मंदिर थे या नहीं यदि थे तब भस्म क्यों हुए यदि नहीं थे तब मत कल्पित सिद्ध होवेगा तथा फिर अतिशय कहां रही।

---

*देखो भाषा पूजा संग्रह नामक पुस्तक पृष्ठ ८४ की पंक्ति ५।६।१२।
ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरान्त चतुर्विंशति जिन समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् ॥ ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरान्त चतुर्विंशति जिन समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ॥ ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरान्त चतुर्विंशति जिन समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ॥ यह तो आह्वान का प्रमाण अब विसर्जन का प्रमाण भी सुनिये उक्त ही पुस्तक के पृष्ठ ५८ की प्रथम वा द्वितीये पंक्ति पूर्णार्घे के बाद विसर्जन करना चाहिये इत्यादि सो यह प्रतिष्ठा वा पूजा करने वाले मंत्र हैं ॥

निष्पक्ष १ यह लोग प्रतिष्ठा के समय मोक्ष प्राप्त तीर्थंकरों का आह्वानादि कर्म करते हैं और मंत्र भी पढ़ते हैं ॥

५ द्रोपति जी ने किस जिनकी पूजा करी उस जिनका क्या नाम कब उसका मंदिर बना किस आचार्य ने प्रतिष्ठा करवाई।

६ भगवान् ने किस नगरी में प्रतिमा के पूजन का उपदेश किया किस श्रावकने धारण किया विधि विधान भी पूछा ३२ सूत्रमें कौनसा सूत्र कौनसा श्रावक और पञ्च समित त्रिगुप्ति का क्या स्वरूप है।

७ हिंसा का कारण क्या है दयाका कारण क्या है? और इन के कार्य क्या २ बनते हैं।

८ नमस्कार मंत्र के पंच पदों के ४ निक्षेप कैसे बनते हैं फिर वह वदनीय कितने हैं अवंदनीय कितने हैं।

इत्यादि जब प्रश्न पूछे भला वहां उत्तर की क्या आशा थी तब विश्नचंद्रजी कहने लगे कि हमतो श्री पूज्य महाराज के दर्शन करने वास्ते आये हैं तब श्रीसोहनलालजी महाराजने कहाकि हां दर्शन करें।

अपितु जब विश्नचंद्रादि साधु जाने लगे, तब फिर कहने लगे कि यदि आत्मारामजी ने दर्शन करने होवें तो वह भी करलेवें तब श्री पूज्य महाराज ने कृपाकरी जैसे उसकी इच्छा हो फिर विश्नचंद्रजी बोले ! यदि प्रश्नोत्तर करने होवें। तब श्रीपूज्य महाराज ने कृपा करी कि—यदि आत्माराम जी की इच्छा प्रश्नोत्तर करने की है तो हम तय्यार हैं। यदि किसी और ने करने हों या किसी अन्यस्थान पर करने हों तो हम श्री सोहनलाल जी को भेजेंगे।

भला प्रश्नोत्तर किसने करने थे ! यह तो केवल कहने मात्र ही था ! जब विश्नचंद्रादि चले गये।

तब श्री सोहनलाल जी महाराज ने १०० प्रश्न लिख कर आत्माराम जी को भेजे तब आत्माराम जी ने १०० प्रश्न लेकर जंडियाला की ओर विहार कर दिया।

किन्तु उत्तर देने का काम ही क्या था।

फिर श्री पूज्य महाराज को लोगों की अतीव विज्ञप्ति होने लगी तब श्री महाराज ने १९३७ का चौमासा अमृतसर में ही कर दिया !

चौमासा में धर्मोद्योत बहुत ही हुआ किन्तु चतुर्मास के पश्चात् जंघा बलक्षीण हो जाने के कारण से श्री पूज्य महाराज अमृतसर में ही विराजमान हो गये । सो श्री पूज्य महाराज के विराजमान होने से पुण्य क्षेत्र, कालानुसार श्रावक जन धार्मिक कार्य करने लगे । और फिर अमृतसर में ही तीन पुरुषों को दीक्षा श्री पूज्य महाराज ने प्रदान करी । जैसे कि—श्री स्वामी ज्ञानचन्द्र जी महाराज १, श्री स्वामी केसरीसिंहजी महाराज१,श्रीस्वामी देवीचन्द्रमहाराज १ ॥

किन्तु काल की विचित्र गति है वह सब को ही देखता रहता है समय को न देखता हुआ किसी निमित्त को सम्मुख रख कर शीघ्र ही आ घेरता है सो १९१८ आषाढ़ कृष्णा १५ को श्री पूज्य महाराज ने पक्खी उपवास किया फिर आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा को अन्न पारणा हुआ सो वह सम्यक् प्रकार से प्रणमत न हुआ तब श्री पूज्य महाराज ने अपने ज्ञान बल से अपनी आयु को ज्ञात करके पुनः आलोचनादि सर्व विधि विधान करके और सर्व जीवों से क्षमापन (क्षमापना) करके शान्ति भावों से श्री संघ के सम्मुख दिन के १ तीन बजे के अनुमान अनशन कर दिया ॥

फिर परम सुन्दर भावों के साथ मुख से अर्हन् अर्हन् का जाप करते हुए १९१८ आषाढ़ शुक्ला द्वितीय दिन के १ बजे के अनुमान श्री पूज्य महाराज इस अनित्य संसार से स्वर्ग गमन हो गये ॥

तब ही देश में श्री संघ को शोक रूप न हो गया पुनः अमृत-सर के श्रावक मंडल ने तारद्वारा नगर २ में श्री पूज्य महाराज के स्वर्गवास होने का समाचार सूचित किया सो समाचार सुनते ही ग्राम २ नगर २ का श्रावक मंडल अमृतसर में ही उपस्थित होगया ।

और लोग नाना प्रकार के शब्दों से भीरोदन से विलपात करते थे क्योंकि एक प्रकार का बस समय सूर्य अस्त ही हो गया था श्री पूज्य महाराज वीर शासन में सूर्य वत् प्रकाश करने हारे थे फिर श्री स्वामी मोहनलाल जी महाराज ने भी संघ को महान् संसार की अनित्यता दिखलाई ॥

फिर लोग निरानंद होते हुए एक सुन्दर विमान बना के तिस में श्री पूज्य महाराज के शरीर को आरूढ करके महान् महोत्सव के साथ जिन क विमानो परि ९४ दुशाले पडे हुए थे वादित्र बजते हुए मृत्यु संस्कार की भूमि में पहोंच गये ॥

फिर चंदन के साथ मृत्यु संस्कार किया गया जिन लोगों ने उक्त महोत्सव को देखा है वह लोग महाराजा रणजीतसिंह जी के मृत्यु महोत्सव की उपमा दिया करते हैं ॥

तात्पर्य यह है कि–जैसा श्री पूज्य महाराज जी का पंडित मृत्यु समाधि युक्त हुआ था तैसे ही लोगों ने परम महोत्सव के साथ श्री पूज्य महाराज के शरीर का अग्नि संस्कार किया ॥

मित्रवरो श्री पूज्य महाराज ने इस भारत भूमि म जैन मार्ग का परम प्रकाश किया। और आत्मा की शुद्धि अर्थ जिन्हों ने एक से लेकर ३३ उपवास पर्य्यन्त तप किया और प्रति चौमासामें एक अष्टादश भक्त त्याग रूप तप करते रहे अर्थात् हर एक चौमासा में एक अट्ठाई करते थे आपका सर्वदीक्षा काल चत्वारिंशति वर्ष हुआ और भी आपने बहुतसे षष्टम् अष्टम् अर्द्ध मास मास इत्यादि तप किये ॥ आप प्राकृत १ संस्कृत २ और जैनसूत्रों वा परमत के शास्त्रों के भी वेत्ता थे। सो ऐसे महानाचार्य्य के स्वर्गवास को देख कर भव्य जन संसार की अनित्यता विचारते थे। क्योंकि जब इस भूमि पर तीर्थंकर चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव इत्यादि न रहे तो भला अन्य की तो क्या ही बात है। इत्यादि विचारों से लोगों ने आत्मा को शान्त किया फिर आचार्य पद स्थापन करने की सम्मति होने लगी क्योंकि सूत्रों में यह कथन है कि आचार्य उपाध्याय बिना गच्छ के मुनियों को विचरना नहीं कल्पता है किन्तु श्री पूज्य महाराज के द्वादश *शिष्य हुए जिन के निम्नलिखित नाम हैं तद्यथा ॥

---

* वर्तमान काल में श्री पूज्य महाराज के शिष्यों का परिवार

१—श्री मुस्ताकराय जी महाराज ।
२—श्री गुलाबराय जी महाराज ॥
३—श्री विमलराय जी महाराज ॥
४—श्रीरामबख्श जी महाराज ॥
५—श्री सुखदेव जी महाराज ॥
६—श्री मोतीराम जी महाराज ॥
७—श्री मोहनलाल जी महाराज ॥
८—श्री रत्नचंद जी महाराज ॥
९—श्री खेमराम जी महाराज ॥
१०—श्री खूबचन्द जी महाराज ॥
११—श्री शालकराम जी महाराज ॥
१२—श्री राधाकृष्ण जी महाराज ॥

फिर श्री संघ ने सम्मति करके श्रीमान् परम पण्डित रामबख्शजी महाराज को संवत १९१९ ज्येष्ठ कृष्णा तृतीय के दिन मालेरकोटले नामक नगर में आचार्य पदपर स्थापन कर दिया ॥

किन्तु श्री पूज्य महाराज को आयु स्वल्प होने से पूज्य पद से २१ दिन पश्चात्ज्येष्ठ शुक्ला ९मी को स्वर्गवास होगये फिर श्रीसंघमें परम शोक उत्पन्न होगया किन्तु ज्ञानबल से उदासीनता को दूर किया फिर आचार्य पद श्री परम शान्ति मुद्रा वैराग्य रूप ज्ञानि के कोषी साहिब श्री स्वामी मोतीराम जी महाराज को दिया गया श्री संघ में शान्ति के प्रभाव से धर्म की वृद्धि होने लगी ॥

---

१० वा ११ साधु ३० आचार्यों के अनुमान हैं किन्तु श्रीपूज्य महाराज से लेकर अद्यापि पर्यन्त ४०० साधु के अनुमान हुए हैं यदि सब का स्वरूप लिखा जाय तो एक भार महान् ग्रंथ बन जावे। इसलिये श्री पूज्य महाराज के शिष्यों का ही नाम लिख दिया है ॥

फिर श्री पूज्य मोतीराम जी महाराज के गच्छ में श्री स्वामी सोहनलाल जी महाराज ने बहुत ही धर्म का उद्योत किया सो पाठकों के जानने वास्ते उदाहरण मात्र लिखते हैं ॥

जैसे कि १९३९ में श्रीस्वामी सोहनलालजी महाराज और श्री स्वामी गणपतिरायजी महाराज तथा श्री स्वामी गैंडेरायजी महाराज स्थाने चतुर्का चौमासा अम्बाले शहर में था तब *आत्मारामजी का भी चौमास अबाले में ही था तब श्री पूज्य सोहनलालजी महाराज ने अम्बाले शहर में जैन धर्म का परम प्रकाश किया अपितु श्री पूज्य महाराज के सन्मुख आत्माराम जी नहीं हुए ॥

तब श्रीपूज्य †महाराज ने ५ प्रश्न लाला तिलोकचन्द्र वकील फीरोज़पुर वाले को दिए क्योंकि बाबूसाहिब ने कहा था कि आप के प्रश्नों का उत्तर मैं आत्माराम जी से लेदूंगा सो प्रश्न निम्नलिखित हैं ॥

१ द्रोपति जी ने प्रतिमा किस जिन की पूजी थी क्योंकि स्थानांग सूत्र में तीन प्रकारके जिन वा केवली वा अर्हन् कथन किये हैं जैसेकि अवधि ज्ञानी १, मनपर्यव ज्ञानी २, केवल ज्ञानी ३; फिर उस प्रतिमा की किस महात्मा ने प्रतिष्ठा करवाई किस तीर्थंकर के उपदेश से वह मंदिर बनायागया अपितु प्राचीन लिखित के जो ज्ञाता जी सूत्र हैं उन में तो नमोत्थुण का पाठ नहीं है किन्तु जो नूतन लिखित के ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र हैं उन में उक्त पाठ विद्यमान है सो यह क्या कारण है ॥

२ (न्हाएकयवलीकम्मा) शब्द का क्या अर्थ करते हैं तथा यदि घर का देव मानोगे तब तो भूतादि सिद्ध होवगे क्योंकि तीर्थंकर

---

*श्रीपरम पूज्य सोहनलालजी महाराजजी का पूर्ण वृतात स्वामी जी के जीवनचरित्र में है किन्तु इस स्थान पर तो उदाहरण मात्र ही लिखा गया है ॥

† इस स्थान पर श्रीपूज्य शब्द का सम्बन्ध श्री स्वामी सोहनलाल जी महाराज से है वर्तमान कालापेक्षा ॥

देव तो किसो के भी घर के देव नहीं हैं अपितु अवतार हैं और देवाधिदेव हैं। तथा यदि मूर्त्यादि सिद्ध करोगे तब सम्बाहन में दूषण अमता है कामदेव श्रावक के स्वरूप को पढ़के देखो॥

३ नीयनिर्युक्ति के प्रमाण से आत्मारामजी ने द्रोपदा जी को विवाह से प्रथम मिथ्यादिष्टनी सिद्ध किया है देखो प्रश्न ५ वां जो आत्मारामजी ने १९२१ में ११ प्रश्न बूटेराय जी को पूछे थे तिस में। किन्तु अब आत्माराम जी मूर्त्ति विषय द्रोपदी जी का प्रमाण देकर भद्र पुरुषों को मिथ्यारूपी जाल में फंसाते हैं अब बतलाइए आत्माराम जी का कौन सा प्रमाण सत्य है, यदि प्रथम प्रमाण सत्य है तो अब प्रमाण देना मिथ्या है जेकर द्रोपदी जी का मूर्त्ति पूजन ही विषय सिद्ध है तो प्रथम प्रमाण असिद्ध हुआ जब ऐसा हो रहा है तब आत्माराम जी परस्पर विरोध कथन करने वाले सिद्ध हुए ॥

४ किस अर्हन ने किस स्थान पर मूर्त्ति पूजा का उपदेश किया है क्योंकि पांच महाव्रत और द्वादश श्रावक के व्रत इनका पूर्वविधि से उपदेश तीर्थंकर भाषित सूत्रों में विद्यमान है तो भला मूर्त्ति का विधि विधान क्यों नहीं कथन किया गया ॥

५ तथा किस अर्हन् ने मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवाई क्योंकि जब तीर्थंकर देव सहस्रों जीवों को दीक्षित करते हैं सहस्रों ही जीवों को द्वादश श्रावक के व्रत ग्रहण करवाते हैं तो भला मूर्त्ति की प्रतिष्ठा भी करवाते होंगे सो किस सूत्र में उक्त विधान है ॥

जब यह प्रश्न बाबू तिलोकचन्द्र जी आत्माराम जी के पास लेगये और आत्माराम जी को सुना भी दिए किन्तु आत्माराम जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया सत्य है उत्तर क्या देवें सूत्रों में कोई पाठ भी *मिले अपितु कल्पित ग्रंथों में अनेक भद्र जीवों को भ्रामितयुक्त करने* वास्ते गाथा बना कर लिख धरी हैं जैसे कि भाष्य तिन कृत के चतुर्विंशति पत्रे पवि लिखा है कि—

केवली जोगेपुच्छा कहणे बोही तहेव एवंवेउ।
किइत्थमुचियमिणिह चेइयदव्वस्स वुड्ढित्ता ॥१२०
कव्वं चंदुव्वसोमयाए सूरोवातेयवंतया।
रइनाहुव्वरूवेणं भरहोव्वजणइठया ॥१०६॥
कप्पदु मुव्वचिंतामणिब्ब चक्किव्ववासुदेवव्व।
पूइज्जतिजणेणं जिण्णुद्धारस्स कतारा ॥१०७॥

भावार्थः—इन गाथाओं का सारांश इतना हि है कि केवली भगवान् ने कहा है कि चैत्य द्रव्य की वृद्धि करनें से मनोकामना पूरी होती है तथा काव्य कला की शक्ति चन्द्रवत् सौम्यरूप तथा सूर्य समान कान्ति कामरूप स्त्री जनों को आनदकारी कल्पवृक्ष तुल्य तथा चिंतामणि रत्न समान तथा चक्रवर्त्तीवासुदेव के समान पूज्यनीय होता है जो पुरुष जीर्ण मंदिरों का उद्धार करता है ॥

प्रिय मित्रवरो! यह मनोक्त कथन नहीं, तो और क्या है क्योंकि किस केवली ने उक्त उपदेश किया है किस सूत्र में गौतम जी ने उक्त विषय कोई भी प्रश्न किया है सो इससे स्वतः ही सिद्ध हो जाता है कि यह सब नूतन ग्रंथकारों ही की लीला है॥

फिर भत्तपच्चक्खाणपइन्ना में लिखा है कि:—

नियदव्वमउव्वजिणिंद, भवणाजिणबिंबवरपइठासु।
वियरइपसत्थपुत्थए,सुतित्थतित्थयरपूआसु॥३१

भावार्थः—इस गाथा में यह दिखलाया है कि श्रावक जिन मंदिर जिन बिंब प्रतिष्ठा जिन पूजा तथा पुस्तक लिखाने में धन को देवे इत्यादि तथा आराधना पइन्ना की ११ वीं गाथा में ऐसे लिखा है। तद्यथा।

अविरईठविणासो चेईयवव्वस्सजविणासंतो।
अन्नेउविक्खिउमे मिच्छामि दुक्कडतस्स॥

भावार्थ —यदि मैंने चैत्यद्रव्य का विनाश किया हो तथा विनाश करते को अनुमोदना करि हो तिस का मुझेमिच्छामि दुक्कड होवे॥

समीक्षा—मित्रवरो यह किस अर्हन् का सत्योपदेश है किस सूत्र में अर्हत् ने मंदिर के वास्ते धन देने की आज्ञा लिखी है तथा किस केवली ने प्रतिष्ठादि क्रिया करवाई हैं सो यह सर्व मनोक्त कथन हैं॥

प्रश्न—आनंद श्रावक ने श्रीमदुपासकदशांग सूत्र में लिखा है जिन पूजा करी है ऐसे हमारे आत्माराम जी सम्यक्त्व शल्योद्धार नामक ग्रंथ में लिखते हैं सो यह क्या उनका असत्य कथन है॥

उत्तर—हे भव्यगण! यह आत्माराम जी का असत्य ही कथन है क्योंकि उक्त सूत्र में जिन पूजा का विधान ही नहीं है अपितु हमारे इस लेख को आत्माराम जी भी स्वीकार करते हैं॥

पक्षपक्ष—आत्माराम जी ने किस पुस्तक में लिखा है कि उक्त सूत्र में जिन पूजा का विधान नहीं है॥

उत्तरपक्ष—सम्यक्त्व शल्योद्धार में॥

पूर्वपक्ष—वह लेख हमको भी दिखलायें॥

उत्तर पक्ष—देखिये सम्यक्त्व शल्योद्धार प्रथम वार का छपा जिन हुआ पृष्ठ १११ महात्मा जी क्या लिखते हैं यद्यपि उपासक दशांगमाते पाठ देखा तो न थी कारण के पूर्वाचार्योंए सभी संक्षेपीनों ल्यांछेपिण आनंद श्रावके जिन प्रतिमा पूजीहती इत्यादि।

मित्रवरो! जब आत्माराम जी को उपासक दशांग में आनंद श्रावक के प्रति पूजा के विषय का पाठ मिलता ही नहीं तो भला आनंद श्रावक जिन पूजा कर्त्ता कैसे सिद्ध होवेगा फिर जो यह लिखा है कि सूत्र संक्षेपित होगये हैं सो यह कथन भी युक्ति बाध्य

ही है क्योंकि जब आनद श्रावक का सूत्रकर्ता ने व्यापारादि वा द्वादश व्रत एकादश श्रावक प्रतिमा इत्यादि सब कथन कर दिये तो भलाविचारने की बात है कि एक नित्यनियम रूप जिन पूजा का ही पाठ सक्षेप करता था कि जिसको आप के कथनानुकूल परम आवश्यकता थी इस से सिद्ध होता है कि यह कथन हो हठ रूप है।

फिर जो आत्माराम जी ने श्री समवायाग जी सूत्र का प्रमाण दे कर स्व. सेवको को आनंद किया है वह भी कथन आत्माराम जी का हासजन्य है क्योंकि :—

श्री समवायांग जी सूत्र में तो केवल उपासक दशांग सूत्र का इतना ही कथन है कि, श्रावकों के नगर के नाम नगरों के बाहिर के उद्यानों के नाम फिर उद्यानों में जिन देवनों के मदिर थे उनके नाम श्रावकों के धर्माचार्य्यों के नाम इत्यादि कथन हैं किन्तु जिन मदिर का कहीं भी कथन नही हैं इसलिये आत्मारामजी का कथन अमान्य है। सो श्री पूज्य महाराज आत्माराम जी के साथ शास्त्रार्थ करने वास्ते जयपुर तक पधारे तो भला आत्माराम जी क्या शक्ति रखते थे कि श्री पूज्य महाराज के सन्मुख आते।

क्योंकि जिन लोगों ने आत्मारामजी के साथ प्रश्नोत्तर किये हैं वे कहते हैं कि आत्माराम जी को प्रश्नोत्तर करने की शक्ति बहुत ही न्यून थी।

जैसे कि लुधियाना में आत्माराम जी ठहरे हुए थे और श्री पूज्य महाराज भी लुधियाने में ही विराजमान थे तब श्रीमान् लाला रुलियामल्ल, लाला सोहनलाल यह दो श्रावक आत्माराम जी के पास गये और पूछने लगे कि ? हेमहात्मन्।

एक पुरुष ने श्रीरामचन्द्र जी का मंदिर बनवाया और एक ने

श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर का मंदिर बनादिया था आप कृपा करें कि द्वादशमा स्वर्ग किस के लिये है क्योंकि जैन सूत्रों में लिखा है कि।

श्रीरामचन्द्र जी और श्रीपार्श्वनाथ जी यह दोनों ही महापुरुष मोक्ष में गये हैं।

तब आत्माराम जी ने कहा कि श्रीपार्श्वनाथ जी के मंदिर के बनवाने वाला तपसंयम के बल से द्वादशवें स्वर्ग में आसक्ता है किन्तु रामचंद्र जी के विषय में कुछ नहीं कह सक्ता।

तब श्रावकों ने कहा कि ! क्यों नहीं आप कह सके जब कि आप मंदिर के उपदेष्टा हैं फिर आपने तपसंयम के साथ द्वादशमा स्वर्ग माना है तो फिर मंदिर की अधिकता ही क्या रही।

इतने कहने पर आत्माराम जी क्रोध के कारण ला मान्य हुए।

पाठकगण ! यह कैसी निर्बलता का लक्षण है जब कि दोनों ही महात्मा मोक्ष में गये फिर एक के पूजक को १२वां स्वर्ग। एक के पूजक को मौन ! वाह !!!

सो सत्य है जेकर दोनों ही पूजकों को द्वादशमा स्वर्ग आत्मा राम जी कहदेते तब आत्माराम जी का मनही विश्रमित हो जाता।

सो हठ धर्म को प्राप्त हुआ जीव क्या २ नहीं कार्य करता और किस २ को नहीं दोषारोपण करता अर्थात् सब को ही दाब देता है।

जैसे कि सम्यक्त्व शल्योद्धार नामक ग्रंथ के १० वें पृष्ठो परि लिखा है कि ! अने गृहस्था वास मापण तीर्थंकर सिद्धनी प्रतिमा पूजे छे इत्यादि।

समालोचना ! प्रथम तो सिद्ध ही अरूपी हैं अब कहिये अरूपी की प्रतिमा कैसे बन सक्ति है।

फिर तीर्थंकर देव गृहस्थावास में ही ३ ज्ञान के धारक थे

किस प्रकार अजीव में जीव संज्ञा धारण करते होंगे क्योंकि यह मिथ्यात्व कर्म है ।

क्योंकि आत्माराम जी भी तत्व निर्णय प्रासाद नामक ग्रंथ के ३५२ पत्रोपरि लिखते हैं कि ।

प्रतिमा स्वल्प बुद्धीनां । अर्थात् प्रतिमा का पूजन अल्प बुद्धिवालों के वास्ते ही है ? सो क्या आत्मारामजी ने तीन ज्ञान के धारकों को अल्प बुद्धिवाले नहीं सिद्ध किया है अवश्य मेव किया है ? सो यह क्या महात्मा जी की बुद्धि का परिचय नहीं है ? अवश्य है ।

तथा सदैव काल से जीवों की लोभ में अधिक रुचि होती है सो लोभ के वशीभूत हो कर बहुत से भव्यजन धर्म से भी पतित हो जाते हैं ॥

जैसे कि ! आत्माराम जी के जीवनचरित्र के ६४ व पृष्टोपरि लिखा हैकि ! अहमदाबाद में एक दिन श्री संघ ने सलाह करके श्री महाराज जी साहिब आत्माराम जो से प्रार्थना करी कि आपने देश पंजाब में जो नये श्रावक बनाये हं तिन को हम मदद देनी चाहते ह तब आत्मराम जी ने कहा कि तुमारी मरजी तुमारा धर्म ही है कि अपने स्वधर्मियों को मदद देनी इत्यादि पाठकगण फिर बहुत से पदार्थ अहमदाबाद से पंजाब देश में आए सो कई भव्यजन मार्ग से पराङ्मुख हुए क्योंकि अर्हन् प्रभु का पथक्षयोपशमभाव का है न तुलोभ का ।

किन्तु महात्मा आत्माराम जो का यह धर्म ही था कि जिस से गुण लिया जावे उसी ही की असत्यरूप निंदा करणी जैसे कि जीवन चरित्र पृष्ट ६३ पर लिखा है कि ! और कितनेक लोकों के दिल म ढूंढकों का अनिष्टा चरण देखनें से जैन धर्म के ऊपर द्वेष हो रहा था दूर किया ! क्योंकि लोकों को मालूम हो गया कि :—

जो मुखबन्धे हैं वे मलीन है और यह पीतांबर धारन करने वाले उज्जल धर्म प्ररूपक हैं अब इस वखत भी किसी क्षत्रीय ब्राह्मण के

साथ बात चीत होने लगती है तो उसी वक्त वे कहने लग जाते हैं कि पंजाब देश के ओसवाल (भावड़) तथा खंडेलवाल तो श्री मानंद विजय (आत्माराम जी) महाराज ने सुधार दिये क्योंकि प्रथम तो वह भावड़े लोक मुहपत्ती बंधे गुरुओं की सोबत से बड़े ही मलीन हो गये थे और इसी वास्ते पंजाब देश में प्रायः सब लोग यह ढूंढक के पुड़े के नाम से प्रसिद्ध थे अब भी जो शेष ढूंढक रह गये हैं उनको लोक बुरे समझते हैं और उन से परहेज भी रखते हैं इत्यादि पाठकगण देखिये जिस श्री श्वेताम्बर स्थानक वासी मुनियों से विद्या पढ़ी और जिस मत में २० वा २२ वर्ष व्यतीत किये उन लोगों का सब के पुड़े के नाम से लिखना ऐसा साहस आत्मारामजी बिना कौन कर सकता है फिर जो लिखा है कि—दुर्गंधी गये हैं । इत्यादि—

मित्रवरो ! क्या ही सुन्दर न्याय है कि जो पंच प्रतिक्रमण के अनुसार कार्य करने वाले हैं वह तो मलीन न हुए किन्तु जो श्वेताम्बर सूत्रानुसार क्रिया में रत हैं वे गंदे हैं धन्य है आत्मारामजी की बुद्धि ॥

फिर लिखा है कि ! भावड़े लोक आत्माराम जी ने सुधार दिये तो क्या आत्मारामजी ने ओसवाल लोकों का ब्राह्मण क्षत्रियादिकों से परस्पर कन्या दानादि का लेन देन करा दिया है नहीं तो कहिये मित्रगण ! उनका सम्बन्ध किन के साथ है ॥

फिर लिखा है । ढूंढिया से लोक परहेज भी रखते हैं मित्रगण ! इस विषय में मैं अधिक नहीं लिखता केवल इतना ही आप लोगों को स्मृति कराता हूं कि गुजरांवाले की बात स्मृति करलिया करें जो महात्माओं की प्रतिष्ठा पर बखेड़ा हुआ था जिस समय तपागच्छियों से ब्राह्मण क्षत्रियों ने प्रत्येक सम्बन्ध भी तोड़ दिया था तो क्या यही सुधार किया ॥

किन्तु जो पुरुष इनके मत को देखता है वे इन को त्यागजाता है जैसे कि १९५७ का चौमासा श्रीपूज्य मद् राम का मालेरकोटले में था और तब ही आत्माराम जी का भी चौमासा मालेरकोटले में ही था।

फिर श्रीपूज्य महाराज ने बहुत से तपागच्छियों के साथ प्रश्नोत्तर किये । और इन लोकों को अत्यन्त ही निरुत्तर किया ॥

अपितु यह लोग हठाग्र ही होनेसे स्वःपक्षको त्याग नहीं करते हैं किन्तु सुबोध जन इन में रहना स्वीकार भी नहीं करते जैसे कि मालेरकोटलेमें ही एक महाशयने संवेगी मत को असत्य ज्ञात करके श्री पूज्य महाराज को शरण ली थी जिस का नाम गणेशीलाल था और तब ही लुधियाने से एक सवेगी संवेग मत को त्याग के रायकोट में श्री गणावच्छेदिक श्री गणपतिराय जी महाराज के पास पहोंच गया जिस का नाम खुशालचंद था इत्यादि और भी कई भव्य जन इसी प्रकार इस मन कल्पित मत के साथ वर्त्ताव करते हैं क्योंकि सूत्रों में पुनः २ यही कथन है कि ! आत्मा तप संयम से ही पार होता है न नु अन्य पदार्थों से ॥

सो इसी प्रकार योगशास्त्र में हेमचन्द्राचार्य अपने बनाये द्वितीय प्रकाश में लिखते हैं कि ॥

*कंचण मणि सोवाणं थंभ सहस्सो सियंभुवणतलं
जोकारिज्ज जिणहरं तओवि तवसंजमो अहिओ ।१११।

अस्यार्थः--हेमचन्द्राचार्य कहते हैं कि ! किसी पुरुष ने सुवर्ण मण्यादि युक्त सहस्रों स्तंभों से विभूषित परम रमनीय ऐसा जिन मंदिर बनाया किन्तु तिस से भी तप संयम का फल महान् है ॥

---

*काञ्चनमणिसोपानंस्तम्भसहस्रोच्छ्रितसुवर्णतलम् ।
यःकारयेज्जिनगृहंततोऽपितपः संयमोऽधिकः ॥ १ ॥

फछडढअणंतगुणो ।

संबोधसत्तरिवृत्तोतु—

कंचणमणिसोवाणेथंभ सहस्सूसिअसुवन्नतोले ।
जाकारवेज्जजिणहरेतओवितवसंजमो अणतगुणोत्ति ॥

एवपाठोदृश्यते ।

देखिये परमात्मावर्थ जो युक्ति से मन्दिर का निषेध ही करते हैं किन्तु यह लोग हठ धर्म के वश हो कर मूर्तियों को बड़ा समझते हैं।

फिर श्री पूज्य महाराज सम्वत् १९४८ में अमृतसर पधारे और आत्मारामजी था बहुत से संवेगी भी अमृतसर में हो आये हुए थे किन्तु श्रीपूज्य महाराज के सम्मुख किस की शक्ति थी कि ठहर सके! परंतु परस्पर कितनेक विज्ञापन भी प्रगट हुए जब श्रीपूज्य महाराज चर्चा के लिये तय्यार हुए तब ही आत्माराम जी अमृतसर से चलदिये सत्य है सूर्य्य के सन्मुख अंधकार कब ठहरे।

फिर श्री पूज्य महाराज ने चौमासे के पश्चात् खोजों (पथरीवाली) में संवेगियों को पराजय किया।

इस प्रकार हुशीआरपुर में भी बहुत से प्रश्नोत्तर होते रहे किन्तु आत्माराम जी प्रतिमा पूजन सूत्रों से नाही सिद्ध करसके तब ही हुशिआरपुर में लाला बूटेराय जी लाला लोकसमल्ल कृपाराम चौधरी इन भाईयों ने आत्माराम जी के कथन को सूत्रों से विरुद्ध ज्ञात करके श्रीपूज्य महाराज से अच्छी प्रकार निर्णय करके श्री पूज्य महाराज से ही सम्यक्त्व धारण करी और तपागच्छ को सूत्रों से विरुद्ध जान के त्याग दिया॥

पाठकजनो! हमारे प्रिय संवेगी भाईयों को आप तीर्थंकरों से भी अधिक का अधिक राग है और इसी वास्ते आप तीर्थंकरों के वप देश का यह लोग अनादर करते हैं और लिखते भी इसी प्रकार हैं जैसे कि सम्यक्त्वशल्योद्धार के ११४वें पृष्ठ पंक्ति ११ पर आत्माराम जी लिखते हैं कि, *भावतीर्थंकर थी पण जिनप्रतिमा अधिकी छे इहनो महादुर्मती तेने उथापे छे तेथी ते भी महामिथ्यात्वी छ एम सिद्ध थाय छे* इत्यादि।

(समीक्षा) देखिये महात्म जी की क्या ही रसभरी सुन्दर वाणी है भला ऐसी पवित्र वाणी आत्माराम जी ने भाषण करनी कहां से

सीखी। तब मानना ही पड़ेगा कि आत्मारामजी का जातिही स्वभाव था इसी वास्ते उववाई जी सूत्र में लिखा है कि, ज्ञाति कुल शुद्ध होना चाहिये, पाठकगण हम आत्माराम जी के कथन की क्या समीक्षा करें हम को तो ऐसे वचन भी भाषण करने कल्पते नहीं हैं किन्तु आत्माराम जी शीघ्र ही अपने कहे वचन से पृथक् भी हो जाते थे ! जैसे किसी श्वेताम्बर ने आत्माराम जी से प्रश्न किया कि महात्मा जी जब आप भाव तीर्थंकर से प्रतिमा को अधिक मानते हो फिर उस प्रतिमा को स्त्रियें संघट्टा क्यों करती हैं तब इस बात का उत्तर महात्मा जी सम्यक्त्वशल्योद्धार के १३६ वें पृष्टोपरि इस प्रकार लिखते हैं ॥

प्रतिमा छे ते स्थापनारूप छेमाटेतेने स्त्री सघटमां काइपण दोष नथी कारण के ते कांई भावअरहंत नथी पण अरहंतनी प्रतिमाछे इत्यादि।

(समीक्षा) पाठकगण देखिये, उक्तप्रश्न होने पर आत्माराम जी ने अपनी लेखनी को किस ओर करलिया है इस से सिद्ध होता है आत्माराम जी परस्पर विरुद्ध लिखने में भी किञ्चित् संकुचित भाव नहीं करते थे, क्योंकि प्रथम लेख में भाव तीर्थंकर से प्रतिमा अधिक सिद्ध करी है इस लेख में भावअर्हत्प्रतिमा से अधिक लिख दिए हैं ॥

फिर यह लोग तपकर्म भी सूत्रों से विलक्षण ही करते हैं जैसे कि, जिस नगर में जिन मंदिर नहीं होता वहां पर यह लोग यह अभिग्रह करके बैठ जाते हैं कि जब तक आप लोग मन्दिर नहीं बनवायेंगे तबतक हम तुम्हारे नगर में पारणा नहीं करेंगे ॥

तब बहुत से भोले भाई इस प्रपंच को ना जानते हुए इस गोरख जाल में फंस जाते हैं फिर षट्काया की हिंसा में कटिबद्ध होजाते हैं किन्तु विचार शीलगृहस्थ इस बन्धन से युक्तिद्वारा मुक्त (छूट) हो जाते हैं ॥

जैसे कि, हीरे नगर के समीप एक यद्मग्राम नामक ग्राम पसता है तिस ग्राम को सिद्ध करने के वास्ते कई सवगी जन पधार गये फिर आते ही तपसा करदो ।

फिर भाईयों ने विज्ञप्ति करि कि स्वामी जी पारणा करो *अर्थात् परौते दुग्धादि लेमावो ?*

तब संवेगी जन कहन लग कि यावत् काल आप लोग श्री मंदर जी की नीव नहीं रखोगे तावत्काल हम यहां पर पारणा नहीं करेंगे तब सुभावकों ने कहा कि यह तो तप हमने किसी भी सूत्र में नहीं सुना तथा फिर जो हमारी इच्छा आप के तप उम जी अंतराय होने की नहीं है क्योंकि एक तो आप के तप की हम अंतराय होवें द्वितीय षट्काया के वध करने वाले बनें तृतीय अर्हत् आज्ञा से विरुद्ध होवें इसलिये यह काम हमारे से नहीं बन पड़ता सो महाराज जी जितनी आप की इच्छा है यावतषट्मास पर्यन्त तपसा करें । जब इतना श्रावकों ने कहा तबही संवेगी साधु तपकर्मको व्युत्सर्ग करके विहार ही करगये। प्रियपाठ को यह सवेगी लोगोंके तप कर्म हैं ॥

अपितु श्री पूज्यमहाराज देश में जयविजय करते हुए तथा हांसी आदि नगरोंमें जो तेरा पंथीनामक एक जैनमतकी नूतन शाखा प्रचलित हो रही है या कि अहिंसाधर्म से विरुद्ध कार्य कर रही है तिस को भी पराजय करके श्री पूज्यमहाराज १९११ में लुधियाने में पधार गये किन्तु लुधियाना में परम पूज्य शान्ति मुद्रा श्री संघ के हितैषी परम पण्डित महत् प्रख्यातियुक्त जिन की परमपवित्र वाग् शक्तियो आचार्यवर्य श्री मोतीराम जी महाराज विराजमान थे । तिस समय म हो श्री ज्ञानचन्द्र जी महाराज श्रीगोविन्दरामजी महार ज । श्रीबिहारीमाल जी महाराज । श्री गणावच्छेदिक श्री गणपतिराय जी महाराज श्री जयाराम जी महाराज इत्यादि ५२ साधुजी के मनुमाम पधार हुए और श्री मतीआर्या पार्वती जी परमुख बहुत सी आर्याए भी एकत्र

जैसे कि, जीरे नगर के समीप एक चकवाच नामक ग्राम बसता है तिस ग्राम को सिद्ध करने के वास्ते कई तपसी जन पधार गये फिर आते ही तपसा करवो ।

फिर भाईयों ने विज्ञप्ति करि कि स्वामी जी पारणा करो अर्थात घरोंसे दुग्धादि लेआवो ।

तब संवेगी जन कहन लग कि यावत काल आप लोग भी मंदर जी की नीम नहीं रखेंगे तावत्काल हम यहां पर पारणा नहीं करेंगे तब सुश्रावकों ने कहा कि यह तो तप हमने किसी भी सूत्र में नहीं सुना तथा फिर भी हमारी इच्छा आप के तप कर्म की अंतराय होने की नहीं है क्योंकि एक तो आप के तप की हम अंतराय होवें द्वितीय षट्काया के वध करने वाले बनें तृतीय अर्हत् आज्ञा से विरुद्ध होवें इसलिये यह काम हमारे से नहीं बन पड़ता सो महाराज जी जितना आप की इच्छा है यावत षट्मास पर्य्यन्त तपसा करें । जब इतना श्रावकों ने कहा तबही संवेगी साधु तपकर्म को व्युत्सर्ग करके विहार ही करगये। प्रियपाठ को यह संवेगी लोगोंके तप कर्म हैं ।

अपितु श्री पूज्यमहाराज देश में जयविजय करते हुए तथा हांसी आदि नगरोंमें जो तेरा पंथीनामक एक जैनमतकी नूतन शाखा प्रचलित हो रही है जो कि अहिंसाधर्म से विरुद्ध कार्य्य कर रही है तिस को भी पराजय करके श्री पूज्यमहाराज १९५१ में लुधियाने में पधार गये किन्तु लुधियाना में परम पूज्य शान्ति मुद्रा श्री संघ के हितषी परम पण्डित महत् प्रज्ञायुक्त जिन की परमपवित्र वाग् शक्तियों आचार्य्यवर्य श्री मोतीराम जी महाराज विराजमान थे । तिस समय में ही श्री लालचन्द्र जी महाराज श्रीगोविन्दरामजी महाराज । श्रीप्रभदयाल जी महाराज । श्री तपस्वोत्कृष्ट श्री गणपतिराय जी महाराज, श्री मयाराम जी महाराज इत्यादि ४२ साधुओं के समुदाय एकत्र हुए और श्री महासतीयों पार्वती जी परमुख बहुत सी आर्यायें भी एकत्र

दिखलाते नहीं हैं सो क्या वे असत्य भाषण नहीं करते तथा क्या वे सूत्रों से अनभिज्ञ नहीं हैं अवश्य हैं ॥

क्योंकि यदि सूत्रों में आत्माराम जी को मूर्त्ति पूजा का पाठ मिलता तो फिर वे ऐसे क्यों लिखते कि सूत्रों में चैत्य वन्दन का विधान नहीं हैं सो उक्त कथन से सिद्ध ही होगया कि आत्माराम जी को कोई भी मूर्त्ति पूजा के विषय में सूत्रों से पाठ जब न मिला तब ही आत्माराम जी ने ऐसे लिखा ॥

किंतु जब आत्माराम जी मूर्त्ति पूजा को रूढिरूप जानते हैं तो फिर भद्र जीवों को सूत्रों के नाम से क्यों भ्रम में डालते हैं सो यह इन का हठ है ॥

फिर लिखा है कि यह बात गीतार्थों के चित्त में सदा प्रकाशमान रहती है सो सत्य है क्योंकि गीतार्थ ही इस बात को सूत्रों से विरुद्ध जानके जड़ पूजा का निषेध करते हैं ।

सो हे संवेगी लोगो अब तो आत्मारामजी के ही कथन को स्वीकार करके जैन सूत्रों में मूर्ति पूजा चली है इस असत्य रूप वाणी को छोड़ो । यदि आप लोग आत्माराम जीसे अधिक विद्वान् हो तब तो आत्मारामजी के लेख को असत्य रूप सिद्ध करके प्रकाश करो यदि आत्मारामजी से स्वल्प विद्वान् हो तब इस असत्य कथन को त्यागो । फिर आत्माराम जी चैत्य वंदन को रूढिरूप सिद्ध करते हैं । सो भी वह कथन युक्ति बाधित ही है ।

क्योंकि यह रूढि भी षट्काया के वध रूपत्याज्य है जैसे हिंसक पर्व, फिर विचारनीय बात है यदि यह रूढि सत्य रूप होती तो सूत्र कर्त्ता मूल सूत्र में ही रखते ।

जब सूत्र कर्त्ता ने मूल सूत्र में उक्त कथन को रखा ही नहीं इस से सिद्ध होगया कि यह कार्य सूत्र कर्त्ता से विरुद्ध है अर्थात् सूत्र सम्मत नहीं है । और श्रीपूज्य महाराज का १९५३ का चोमासा

योग्य चैत्यवंदन आवश्यकादिवत और प्राणातिपात की तरह सूत्र में निषेध भी नहीं करा है और दोनों में चिरकाल से रूढ़िरूप चला आता है सो भी संसार भीरु गीतार्थ स्वमति कल्पित दूषणे करी दूषित न करे गीतार्थों के चित्त में ये बात सदा प्रकाश मान रहती है सोई दिखाते हैं इत्यादि ॥

फिर पृष्ठ २११ पंक्ति छवी पर लिखा है कि चिरंतन जनोंने आचरण करी है तिन को अविधि कहकर के निषेध करते हैं और कहते हैं यह क्रियायें धर्मीजनों को करणे योग्य नहिं हैं तिन किन क्रियाओं विषय ॥

चैत्य कृत्येषुस्नात्र विधान तिमा करणादि तिन विषे पूर्व पुरुषों की प रंपरा करके जो विधि चली आती है तिस को अविधी कहते हैं और इस काल की चलाई का विधि कहते हैं ऐसे कहने वाले अनेक दिखलाई देते हैं वे महासाहसीक हैं ॥

प्रश्न—तिनोंने जो प्रवृत्ति करी है तिसको गीतार्थ प्रशंसे के नहिं प्रशंसे ?

उत्तर—एक प्रवृत्ति को निर्जरावायक बहुमानसारभया है जिन की ऐसे गीतार्थ सूत्र संवाद के बिना अर्थात् सूत्र में जो नहिं कथन करा है तिस विधि का बहुमान नहिं करते हैं किन्तु तिसका अवधीरन अर्थात् निरादर करके मध्यस्थ भाव से उपेक्षा करके सूत्रानुसार कथन करते हैं भोला जनोंको उपदेश करते हैं इत्यादि ॥

समीक्षा—पाठकगण उक्त कथन में आत्माराम जी स्पष्ट तया सिद्ध करते हैं कि जैन सूत्रों में चैत्यवंदन का विधान नहीं है किन्तु चिरकाल से रूढ़िरूप चलाआता है ? सो, सत्य है, हम इस कथन को सहर्ष स्वीकार करते हैं ! किन्तु जो संवेगीजन यह कहते हैं कि सूत्रों में स्थान २ पर मंदिर पूजा का विधान है परंतु ढूंढिये

दिखलाते नहीं हैं सो क्या वे असत्य भाषण नहीं करते तथा क्या वे सूत्रों से अनभिज्ञ नहीं हैं अवश्य हैं ॥

क्योंकि यदि सूत्रों में आत्माराम जी को मूर्त्ति पूजा का पाठ मिलता तो फिर वे ऐसे क्यों लिखते कि सूत्रों में चैत्य वन्दन का विधान नहीं हैं सो उक्त कथन से सिद्ध ही होगया कि आत्माराम जी को कोई भी मूर्त्ति पूजा के विषय में सूत्रों से पाठ जब न मिला तब ही आत्माराम जी ने ऐसे लिखा ॥

किंतु जब आत्माराम जो मूर्त्ति पूजा को रूढिरूप जानते हैं तो फिर भद्र जीवों को सूत्रों के नाम से क्यों भ्रम में डालते हैं सो यह इन का हठ है ॥

फिर लिखा है कि यह बात गीतार्थों के चित्तमें सदा प्रकाशमान रहती है सो सत्य है क्योंकि गीतार्थ हो इस बात को सूत्रों से विरुद्ध जानके जड़ पूजा का निषेध करते हैं ।

सो हे संवेगी लोगो अब तो आत्मारामजी के ही कथन को स्वीकार करके जैन सूत्रों में मूर्ति पूजा चली है इस असत्य रूप वाणी को छोड़ो ! यदि आप लोग आत्माराम जीसे अधिक विद्वान् हो तब तो आत्मारामजी के लेख को असत्य रूप सिद्ध करके प्रकाश करो यदि आत्मारामजी से स्वल्प विद्वान् हो तब इस असत्य कथन को त्यागो । फिर आत्माराम जी चैत्य वंदन को रूढि.रूप सिद्ध करते हैं ! सो भी वह कथन युक्ति वाधित ही है ।

क्योंकि यह रूढि भी षट्काया के वध रूपत्याज्य है जैसे हिंसक पर्व; फिर विचारनीय बात है यदि यह रूढि सत्य रूप होती तो सूत्र कर्त्ता मूल सूत्र में ही रखते ।

जब सूत्र कर्त्ता ने मूल सूत्र में उक्त कथन को रखा ही नहीं इस से सिद्ध होगया कि यह कार्य सूत्र कर्त्ता से विरुद्ध है अर्थात् सूत्र सम्मत नहीं है । और श्रीपूज्य महाराज का १९५३ का चौमासा

हुशियारपुर में था जिस काल में ही चौर विजय आदि संवेगियों का भी चौमासा हुशियारपुर में था किन्तु कोई भी उन्हें श्रीमहाराज के सन्मुख नहीं हुआ।

फिर श्री पूज्य महाराज ने १९५८ का चौमासा मालेरकोटले में किया। और जिस समय श्री श्री परमाचार्य शान्ति मुद्रा वाले में समुद्रवत श्री पूज्य मोतीराम जी महाराज वा श्रीगणावच्छेदिक श्री गणपतिरायजी महाराज इत्यादि साधुओं का चौमासा लुधियाने में था तब श्री पूज्य मोतीरामजी महाराज को ज्वर आने लगा अपितु सर्वाङ्गों की अति वृद्धि हो जाने से तथा आयुक्षय होने के कारण से श्रीपूज्य महाराज १९५८ आश्विन कृष्णा द्वादशी को स्वर्ग गमन हो गये।

तब चौमासे के पश्चात् श्री गणपतिराय जी महाराज वा श्री लाल चन्द्र जी महाराज इत्यादि २८ साधु पटियाले में एकत्र हुए फिर श्री सबने सम्मति करके अम्बाला निवासी लाला छज्जूमल्ल जल्ला मदर था अमृतसर निवासी श्रावकों की सम्मति के साथ वा श्रीमान् लाला शिवदयाल पटियाला वाले की भी सम्मति अनुकूल होने महान् आनन्द के साथ श्रीपूज्य मोतीरामजी महाराज की आज्ञानुकूल १९५८ मार्गशीर्ष शुक्ला ८ मी को बृहस्पति वार के दिन मध्याह्न के समय पूर्वोक्त विधि के साथ श्री सबने श्री स्वामी सोहनलालजी महाराज को श्रीआचार्य पद पर स्थापन कर दिया तब से ही पंजाब में श्रीपूज्य सोहनलाल जी महाराज ऐसे लिखना आरंभ हो गया और श्री सबमें शान्ति के प्रभाव से अनेक धार्मिक कार्य होने लगे वा हो रहे हैं।

अपितु श्री पूज्य महाराज भगवान वर्धमान स्वामी के ८१ पट्टो परि विराजमान हैं।

श्रीपूज्य महाराजने जैनधर्म का प्रकाश ग्राम नगरोंमें करके १९९१ का चौमासा अमृतसर में किया॥

फिर चौमासा के पश्चात् जंघाबल क्षीण हो जाने के कारण वा शरीर में व्यथा के प्रयोग से श्री पूज्य महाराज अमृतसर में ही श्रीमान् लाला हरनामदास संतलालकी कोठीमें विराजमान होगये ॥

किन्तु श्री आचार्य महाराज के पधारने से अमृतसर में धार्मिक अनेक कार्य हुए वा हो रहे हैं।

प्रिय पाठ को ! एक बात और भी तपागच्छियों में बड़ी प्रधानता से चल पड़ी है कि किसी अज्ञात मुनि को यह लोग किसी प्रकार के फंदे में वेष्टन करके सनातन जैनधर्मसे पतित कर देते हैं ! फिर आपही असत्य रूप निंदा लिख के उस के नाम से मुद्रित कराते हैं पुनः कहते हैं, भाइयो यह प्रथम ढूंढिया था फिर इसने ढूंढियों का अनिष्टाचरण देख कर तथा जैन सूत्रों में स्थान २ मूर्ति पूजा के पाठों को पढ़कर ( जो पाठ ढूंढिये किसी को सुनाते नहीं ) विचार किया फिर सम्यक्त्व शल्योद्धार को देखा तब ही इस के चित्त में मूर्ति पूजा अर्हत् भाषितस्थित हो गई फिर इसने बड़े २ ढूंढकों के साथ प्रश्नोत्तर किये किन्तु किसी भी ढूंढक ने इस को उत्तर नहीं दिया, तो फिर इस ने जान लिया कि यह ढूंढक मत तो स्वः कपोल कल्पित ही है पुनः इसने शुद्ध सनातन जैनमत मूर्ति पूजा रूप स्वीकार करलिया, प्रियपाठको ! यह सब इनके स्वकपोल कल्पित कथन हैं हम आपको इस विषय का उदाहरण देते हैं ॥

जैसे कि अनुमान १९६४ वर्ष में वल्लभ विजय जीने अमृतसर से एक चूनीलाल श्वेताम्बर साधु को किसी प्रकार अपने फंदे में डाल कर बनारस जैन पाठशाला में भेज दिया ! और उसको एक लेख भी जैनमत की निंदा रूप लिखकर भेजा और साथ में यह भी लिख दिया कि आप अपने नामोपरि इस लेख को प्रकाशित करा दो तो चूनीलाल जी ने एक पत्र लिखकर वल्लभ विजय जी को भेजा सो पाठकों के जानने वास्ते सर्व पत्र की नकल जैसी है वैसी ही हम इस स्थान पर देते हैं देखिये !

श्री जिनेन्द्राय नमः।

विदित हो कि जो मजमुन बना कर आपने छपवाने के वास्ते मेरेकु भेजा सो ऐसा मिश्र रूप मूठा लेख में अपने नाम पर नहिं छपवा सकता मागे भि आप को लिखा गया था सकल लेख में अपनि तरफ स नहि छपवा सकता मगर हरज मरज के जम्मेवार आप बनो तो मेरे को कोई हरकत नहिं ॥

और आपने जो यहां नर को पढ़ने के लिये भेजा था तो मैंने पहले आप को कहे दिया था कि पढ़कर जो मेरे को यत्य भावेगा सो ग्रहण करुंगा तब मैं बम्बइ लखाले में था वहां से भि आपको लिखा गया था के मेर ख्याल मजे आपके मजब के नहीं है तो आपने एक पत्र मे लिखा था कि तुम आचार गुचार मत देखो पढ़ने कि तरफ ख्याल रक्खो, पढकरके जो तुम को अच्छा लगेगा सो करना तो फिर आप यों लिखते हो के उनके बरखलाफ छपाओ और लोगों को लिखते हो के इसकी शंका ठीक करो इस वास्ते आप को कुछ प्रश्न लिखता हुं क्योंकि ? यों तो कोई ठीक करते लाजम नहीं हैं सो आप हो कृपा करके शंका का समाधान करें जा मैं प्रश्न लिखता हुं उनका जुबाब मेरे को मूल पंतालोस आगमों के जरिये आत्मानन्द पत्रका लाहौर म छपवा कर प्रगट कर दो क्योंकि मेरी शंका भि ठीक हो जावेगी तदनंतर दुसरे प्राणीयों को लाभ होगा इन प्रश्नों का जबाब जरुर रोज के भितर आत्मानंद पत्रका लाहौर में प्रकाश करदें आगमों अनुसार अब प्रश्न लिखते हैं।

प्रश्न १—जो पञ्च प्रतीक्रमण तुम तथा तुमारे सेवक (श्रावक) करते हैं वो पंतालिस आगमों से किस आगममें हैं ।

२—इच्छाकारिसुहराह ये जो गुरु को शाता पुछने का सूत्र है वो किस आगम में चला है।

३—सामायक पारने का सामाइयवयजुत्ता जो सूत्र हैं वो कहां है।

४—जगचिंतामणि चैत्यवन्दन मन्त्र पढकर *मुरती को नमस्कार करनी किस शास्त्र में लिखी हैं।

५—नमोऽर्हत् सिद्धाचार्यो पाध्याय सर्व साधुभ्य: ये मंत्र किस आगम मे हैं।

६—जावंति चेइयाइं किस आगम में हैं।

७—उवसग्गहर, लघुशान्तीस्तव जो प्रतिक्रमण में बोलते हो किस शास्त्र में लिखा है के प्रतीक्रमण में स्तोत्र पढ़ने।

८—प्रतीक्रमण में स्तवन और सज्झाय बोलते हो सो कोण से आगम में चले हैं।

९—तीर्थ वन्दना जो तुमेरे पंच प्रतीक्रमण में है सो किस शास्त्र के जरीये।

१०—पोसहनुपच्चक्खाणवा पोसहपारवानी गाथा किस आगम मे हैं जो तुमारे मजब मे प्रचलित है।

११—सिद्धाचल पर्वत को चैत्यवदन करनो ये काहां लिखी हैं।

१२—पालीताने के पास जो सेतरूंजी नदी है उस में स्नान करना महात्म किस आगम से बतलाते हो।

१३—हर्डे और कोपरा जंगहर्डे इत्यादि वस्तु अणाहारक कहते हो सो किस आगम में ऐसी वस्तु को अनाहारक लिखा है साथ इस के ये भी निरणे किया जावे के पूर्वोक्त वस्तुओं को जो तुम रात्री में खाते हो तो तुमारा रात्री भोजन व्रत भङ्ग होता है या नहीं।

---

*पत्र जैसे लिखा हुआ था तैसे ही यहां पर लिखा गया है, किन्तु हमने पत्र को शुद्ध करना ठीक नहीं ज्ञातकरा क्योंकि लेखक की जो आशा है वह भव्यजन शीघ्र ही जान लेंगे इस प्रकार अन्य पत्र भी शुद्ध नहीं किये गये, तथा यदि शुद्ध करके द्वितीया वार लिखते तो पुस्तक के अतीव वृद्धि होने का भय था।

१४—बतामा धातु की मुर्तीवाला ठीकहर याने धातु की कलममें और दस्त रखने के लिये टीनकीयां पेटीया जिनत की डबोया नसवार के लिये और खाने की वस्तु पुष्ट रखायचोयों का तेल डाँ देवाह वेगेरा ये सर्व प्रगरे में दाखल हैं या नहीं और ये कैसला किया जावे के जो हैं तो तुमारा पंचमा मद्दा प्रत प्रगरे और छठा रात्रो भोजन प्रत भन्न हुआ या ना जेकर कहों के ये किसे प्रगरे में सामल नहि तो बतलामा किस में शामल है आगम से जवाब देना ग्रंथ का हवाला नहीं मंजुर।

१५—हर्दें जो हैं सचित हैं के अचित।

१६—मूर्ति पूजा का उपदेश चोवी तीर्थंकरों में किस तीर्थंकर महाराज ने किया।

१७—मरुय जो ने चोवीस तीर्थंकरों कीयां चोवो मूर्त्तीयां बन वाया बतलाते हो सो किस आगम में लिखा है।

१८—मर्त्ती पर सचित जल वा पुष्प फलादि चढाने से प्राणाती पातादिक दोष लगता है या नहीं।

१९—जैसे उत्तराध्ययन भगवती जी में व्रत पोषध समाइक पुछना पडेना मानिक का फल लिखा है वैसे किसि आगम में मुर्त्ती पूजा का फल लिखा हैं व कहा हैं तो लिखो किस आगम में कहा हैं।

२०—तुम लोक पेशाब बमारी के वक्त इस्तेमाल करते हो और कहते हो देवाह में कोइ हरकत नहि सो कहाँ लिखा है।

२१—जिस पियाले में पेशाब करते हो उसको किरता पुछते हो और या धोते हो तो क्या उन में समोउम जीव पडते हैं के नहीं।

२२—देवने धर्म्मी हैं के अधर्म्मी हैं जवाब में शास्त्र का पाठ लिखना।

२३—तीर्थंकर कहने का हेतु क्या हैं।

२४—मुह पत्ती हाथ में रखनी किस आगम में कही है।

२५—दशवै कालिक आचारांग जी में जो धोवन व्रत ना चावला दिक का चला है वो क्यों नहि लेते क्या कारण।

दसखतचुनीलाल।

पाठकगण! इन प्रश्नों का उत्तर आत्मानंद जैन पत्रि का में प्रकाशित नहीं हुआ है विचारणे की बात है हमारे प्रिय संवेगी भाई सत्यादि व्रतों को त्यक्त करके क्या २ काम कर रहे हैं क्योंकि संवेगमत में *शास्त्राभ्यास तो स्वल्प ही है किन्तु मनः कल्पित रूप ग्रंथों का अभ्यास महान् है इस वास्ते इन लोगों की वुद्धि विह्वल हो रही है, और फिर यह हमारे प्रिय भाई इसि वास्ते प्रश्न का उत्तर न आने से शीघ्र ही क्रोध करने लगजाते हैं मुख से अपशब्द बोलते हैं।

उदाहरण! जैसे कि सम्वत् १९४७ में आत्माराम जी कसूर (कुशपुर) में ठहरे हुए थे तब श्री श्वेताम्बर स्थानक वासी श्रावक समुदाय जैसे कि लाला जीवणशाह †बधावेशाह जीवंदेशाह, दिवानचंद, कृपाराम, लाला आसाराम, गुरुदित्तेशाह, दुनिचंद, भानेशाह, बिल्लेशाह, लाला गौरीशंकरशाह बाबू परमानद प्लीडर मोतीराम, इत्यादि श्रावक आत्माराम जी के पास गये और यह प्रश्न किया!

कि आप हमको एक जैन शास्त्र के मूल पाठ से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करके दिखलावें!

आत्माराम जी—जैनशास्त्र में मूर्त्तिपूजा का विधान है॥

---

*आत्मारामजी के जीवन चरित्र के पढने से भी निश्चय होता है कि। आत्माराम जी ने जो कुछ पठन किया है वे सर्व श्री श्वेताम्बर जैन मुनियों से ही किया है किन्तु संवेगमत के धारण करने के पश्चात् किसी भी संवेगी से कोई भी पुस्तक नहीं पढ़ा है।

†उक्त नामों से कई श्रावक जन आत्माराम जी के पास नहीं गए थे और कइ अन्य मिल गये थे!

श्रावकमंडल—कौनसे सूत्रमें है ॥

आत्माराम जी—दशवैकालिक सूत्र में है ॥

श्रावकमंडल—हम आपको श्रीमान लाला हरजसराय जी। भंडार से दशवैकालिक सूत्र देते हैं आप हम को पाठ दिखला दें।

आत्माराम जी—अच्छा लाला।

श्रावकमंडल ने जब श्रीमान् लाला हरजसरायजी के भंडार में से श्री दशवैकालिक सूत्र लाकर आत्माराम जी को दिखलाया और कहा कि आप इस में मूर्ति पूजा दिखलावें तब आत्माराम जी ने श्री दशवैकालिक सूत्र के पीछे जो चूलिका लिखी होती है उस में से एक गाथा दिखलाई तब श्री श्रावकमंडल ने कहा कि यह सूत्र की गाथा नहीं है और आप की प्रतिज्ञा यह थी कि हम श्री दशवैकालिक सूत्र से दिखलावेंगे सो चूलिका न सूत्र है नाही प्रमाणीक है और इसका कर्ता कौन है ?

जब इतना श्रावक मंडल ने कहा तब आत्माराम जी क्रोधातुर होगये फिर अनुचित शब्द बोलने लग गये क्या जाने श्रावक मंडल अच्छे मुहूर्त में न गया होगा जिस वास्ते आत्माराम जी तपगये।

तथा श्री सूत्रकृतांग में ठीक कहा कि (मा हमे सरण मंति) अर्थात् हारे हुए पुरुष का क्रोध ही का शरण है सो इसी प्रकार आत्माराम जी ने भी श्रावक मंडल के साथ बर्ताव किया ॥

*मित्रगण यह संवेगी लोग चैत्य शब्द से ही मूर्तिपूजा सिद्ध करनी चाहते हैं सो यह वही चैत्य शब्द है जिस के विषय अमरकोष में ऐसे उल्लेख है यथा :—*

(चैत्यमायतनं तुल्ये [illegible] मक्ष्य) अर्थात् चैत्य और आयतन यह दोनों नाम यज्ञशाला की भूमिका के हैं ॥

जिस का संवेगी लोग मूर्ति पूजा में व्यवहार करते हैं शोक॥

प्रश्न—मूर्ति ध्यान का कारण है इस लिये ही पूजन योग्य है ॥

उत्तर—मित्रवर ! यह भी कथन आप का हास्ययुक्त है क्योंकि कारण के सदृश ही कार्य होता है सो चेतन का कारण जड़रूप नहीं हुआ करता यदि मूर्त्ति कारण मानोगे तो क्या कार्य पर्वत बनावेंगे इसलिये चेतन के ध्यान का कारण जीव अजीवकी अनुप्रेक्षा ही है ॥

प्रश्न—जैसे सामायिक करने में आसनादिक की आवश्यकता है इसी प्रकार ध्यान के समय में मूर्त्ति की आवश्यकता है ॥

उत्तर—हे भव्य यह भी आप का कथन अमाननीय है क्योंकि आसनादिक को आवश्यक में केवलजीवरक्षा के वास्ते ही आवश्यकता है ना कि आसन पूज्यनीय है फिर जो महात्मा जिनकल्पी होते हैं वे आसनादि के भी त्यागी होते हैं इस लिये यह आपका हेतु कार्य साधिकनहीं है फिर*आसन अपूज्य है इसी प्रकार मूर्त्ति भी अपूज्य है। तथा तत्त्वनिर्णय प्रासादनामक ग्रंथ में जितने दिगम्बरों की ओर से आत्माराम जी ने मूर्त्तिविषय आक्षेप तो लिखे हैं किन्तु उनका युक्तिपूर्वक एक भी उत्तर नहीं दिया है अपितु, उन उत्तरों से मूर्त्ति अमाननीयही सिद्ध होती है। यथा उदाहरण तत्त्वनिर्णय प्रासाद स्तंभ ३३ वां ॥

प्रश्न—जब जिन प्रतिमा जिनवर के समान मानते हो तो फिर जिन प्रतिमा के लिङ्ग का चिन्ह क्यों नहीं करते।

उत्तर—जिनेन्द्रके तो अतिशय के प्रभाव से लिंगादि नहींदीखते हैं और प्रतिमाके तो अतिशय नहीं हैं इस वास्ते तिस के लिंगादि दिख पड़ते हैं इत्यादि ॥

प्रियवरो ! देखिये जब जिन प्रतिमा को कोई भी अतिशय नहीं है तो फिर उस को भाव तीर्थंकर से भी अधिक मानना सो क्या यह हठ धर्म नहीं है अवश्य है। तथा जो पदार्थ आप ही शून्य रूप है वे ज्ञान

---

*केवल आसन पूज्यनीय नहीं होता है किन्तु आसनारूढ जीव शुद्ध रूप पूज्यनीय है अर्थात् वंदनीय है ॥

दाता कैसे बन सकता है। इसीलिये यह मूर्तिपूजा युक्ति या सूत्र द्वारा बाधित ही है। तथा जिस प्रकार यह लोग मूर्तिपूजा में हठ करते हैं इसी प्रकार मुखपत्ति विषय में भी बर्ताव करते हैं जिस के लिये अनेक सूत्रों या ग्रन्थों के पाठ होते हुए भी यह लोग मुखपत्ति हाथमें ही रखते हैं सो जिज्ञासुओं ! इस के प्रमाणार्थ जैनहितेच्छु, पत्र ईस्वी सन् १९०१ माह जुलाई, अंक ४ पृष्ठ १ से देखिये —

श्रीमान् संपादक वाडीलालजी लिखते हैं कि मुखपत्ति का सवाल के जिसको हमने बिलकुल छोड़ दिया था उसको छेड़ के गंभीर रूप देने वाले भाइयों खुद जिन किताबों को मानते हैं उन किताबों का अभिप्राय यहां बतलाते हैं। मुखपत्ति बारा, बाही और जो तरकी मिलता है।

हित शिक्षारास ? श्री विजयसेन सूरि के प्रमाणिक श्रावक ने संवत् ११८२ में बनाया है उस में लिखा है कि।—

मुखपांधेते मुहपत्ति, हेठीपाटोधार ।
अतिहेठेदाढायइ, ओतरगलेनिवार ।।१।।
एक कान भज सम कही,समे पछेवडी ठाम ।
केडेखोशीकोथली, नाखे पुण्य ने काम ।।२।।

सब इस हास्य रस युक्त काव्य में मुहपत्ति का हेतु बराबर समझाया है ! डेरे में पैसे की कसलो बांध रखने से क्या पुण्य होगा ? पैसे की कसलो ता हाथ में रखने से हो उपयोगी भी ऋषि विजय जी, साधु जिस का कहते हैं सम्वत् १८१ में श्री ऋषि विजय जी महाराज ने हरिबल मच्छी का रास बनाया है उस में प्रमाद संबंधी छन्द के बारे में उपदेश दिया है कि।—

मुखभजोभी जीवडा मांडे निज षटकर्म,
साधजन मुखमुखति बाधी कहे जिन धर्म ।। १ ।।

सुविहितमुनिजानीये मांडे निजषट कर्म ॥
साधुजन मुखमुपत्ति बांधी कहे जिन धर्म ॥ २ ॥

श्री ओघनिर्युक्ति गाथा १०६६–६४ की चूर्णी।

चउरंगुलंविहत्थी एयंमुहणंतगस्सउपमाण बीयं मुहप्पाणं गणणपमाणेणइक्किकं ॥ १ ॥

संपाइमरयणु पमझणठावयंतिमुहपत्ति नासं-मुहंच बंधइ तीएवसहिपमज्झंतो ॥ २ ॥

संपातिमसत्वरक्षणार्थंजल्पद्भिर्मुखेदियतेरजः सचितरेणुस्ततप्रमार्जनार्थंमुखवस्त्रिकावदति नासिकां मुखंचबध्नातिययामुखवस्त्रिकयावसतिप्रमार्जयन्थे-नयेनमुखादोनरजः प्रविशति । श्रीप्रवचनसारोद्धार गाथा ॥ ५२१ ॥ संपातिमजीवमाक्षिकाद्याः रक्षणार्थं भाषमाणेर्मुखेमुखवस्त्रकादीयतेतथारजःसचितपृथ्वी स्तत् प्रमाउर्जनार्थंच मुखपातिकांदीयते।

रेणुप्रमाज्र्जनार्थं प्रतिपादयंति तीर्थंकरादयस्तथा वसतिं प्रमाज्र्जयन् साधुर्नासां मुखं च बध्नाति आ-छादयति। पुरिमड्ढका प्रायश्चित।

श्री महानिशीथ में मुखवस्त्रिका वगैरह इरिया वहिया पडिक में वंदणा—प्रति क्रमण सज्झायकरेवाचनादे—ले तो पुरिमड्ढका प्रायश्चित कहा है—योगशास्त्र की वृत्ति में वाचना पृच्छना के वक्त मुहपत्ति बांधना कहा है ॥

अपितु *हेमचन्द्राचार्य यह भी लिखते हैं कि उष्ण श्वास से वायु कायां की भी हिंसा होती है।

साधु विधि प्रकाश में।

प्रति लेखन करते वक्त मुहपत्ति बांधना कहा है।

प्रतिक्रमणमें काजो लेते वक्त मुखवस्त्रिका बांधना कहा है—आचार दिनकर में आचार्य के लिये मुहपत्ति बांधना कहा है।

शतपदी में

देशना देते वक्त मुहपत्ती बांधना कहा है।

निशीथचूर्णि—उद्देश १० के समिति के अधिकार में भाषा बोलते वक्त मुहपत्ती हरी भद्रसूरीकृत आवश्यक बृहत् वृत्ति में मरमने साधु को भी मुहपत्ति बांधना कहा है।

भद्रसूरीकृत यति योगचर्यासटीक में काजो लेते या उठे वाले मुहपत्ती बांधना कहा है—बृहत् भाष्य में देशना देते वक्त गणधर प्रमुख आचार्य ने भी मुहपत्ती बांधी ऐसा कहा है—विचार रत्नाकर ग्रंथ में व्याख्यान के समय मुहपत्ती बांधना कहा है।

श्री भगवती शतक १६ उद्देशा—२—में सावद्यमित्यादि पाठ वृत्तिकेरीत से समजा जाता है कि जिस समय हाथमुख आगे वस्त्रादि रखे सिवाय बोले उस वक्त सावद्य भाषा बोले जाते हैं।

और मुह के आगे हस्तवस्त्रादि आडे रख कर बोले उस वक्त जीव रक्षण के लिये निर्वद्य भाषा बोला कहना—अंतगडसूत्र में अधिकार है कि—गौतमस्वामी गोचरी को गये वहां एवता ने (अतिमुक्त) कुमारु पूछा के कहां पधारते हो। गौतम जी ने। भिक्षा वृत्ति के लिये जाता हूं ऐसा कहा तब मेरे घर जोगवाई है इसलिये वहां चलिये।

---

* योग शास्त्र सटीक तृतीय प्रकाश पृष्टाङ्क ५२४ यथा:—मुखवस्त्रमपि सम्पातिम जीव रक्षणमुष्ण मुखवात विराध्यमान-बाह्य वायु काय जीव रक्षणान्मुखे धूलि प्रवेश रक्षणाच्चोपयोगि। इति

ऐसा कह कर पर्वता ने गौतमस्वामी के एक हात की अंगुलि पकड़ के रस्ते में यातें करते करते दोनों चले। अब जब एक हाथ में झोली है और दूसरा हाथ पर्वता ने रोका है तब (जो मुहके आगे मुह,पत्ती नहीं वांधी हो तो)क्या गौतमस्वामी खुल्ले मुह से वातचीत करते गये होंगे॥

इस तरहें से चारों बाजु से विचार करनें से मुहपत्ती सावित होती है ऐसा होकर भी एक फकत मत की बात है कि कितने उसको अधर उढा देते हैं। व्याख्यान के वकत भी मुहपत्ती नहीं बाधने वाले वर्ग के साधुओं को बादमरने के उनके कान छेद के मुहपत्ति बाधनी पड़ती हैं इससे खुल्लि तरह से दुराग्रह सावित होता है। जिस मुहपत्ती को शास्त्र स्थापन करता है जिस मुहपत्ती का उपयोग पारसी आदि अन्य धर्म के गुरु भी धर्म कथा वख़्त करते हैं॥

जिस मुहपत्ति को हाल के सुधरे हुए जमानें के युरोपियन डाक्टर चिरफाड के वक्त मुह के आगे बांधते हैं॥

जो मुहपत्ति खुद नहीं बांधने वाले आत्माराम जी महाराज उन्हों ने मान्य रखी और खुद क्यों नही बांधते इस के सबब बतलाने में पकडे गये और अपने वर्ग में झूठे पडे॥

ऐसी मुहपत्ति जैन मुनि का चिन्ह है। जैन योद्धे का हथियार है जैन शासन का शृंगार है और सब को माननीय है।।

नाभा में दो वख्त उसका जय हुवा यह कुछ आश्चर्य वार्ता नहीं उसका सर्वत्र हमेशा विजय,ही है लेकिन जिस का नाम मुहपत्ति मुह का पत्ति मुह को कबजे में रखने वाली उसकु धर्म का बाह्य चिन्ह मानने वाले लोग उनके निंदकों के मुवाफिक चर्चा के वहानें से कभी यद्वा तद्वा मिथ्या भाषण तुच्छ शब्द बोलेंगे ही नहीं मुह ऊपर का यह काबु के जो सज्जनाई का लक्षण है उस को कजियाखोर लोग निर्बलता ठहराने उससे क्या मुहपत्ति के भक्त निर्बल बन जायँगे गौतम की लब्धि के कौण अज्ञात है॥

प्रिय पाठकगण ! यह सर्व बचन लेख हमने यथावत् उस पत्र से उद्धृत किये हैं सो उक्त कथनों से सिद्ध है कि जैन धर्म के मुनियों का चिन्ह मुहपत्ति मुहपर बांधना ही सिद्ध है सो इसके प्रमाण होते हुए जो संवेगी लोग मुहपत्ति मुख के साथ नहीं बांधते हैं वे उनका असत्य हठ है ॥

तथा जो यह लोग सत्पुरुषों को पुनः पुनः कटु शब्द प्रदान करते हैं जिस का मूल कारण यही है कि जो शुद्ध पुरुष शास्त्रानुकूल शुद्धोपदेश करता है उस पुरुष से ही यह लोग प्रतिकूल हो जाते हैं और फिर उस को अनुचित शब्द बोलने वा लिखने लग जाते हैं । उदाहरण । जैसे कि श्रीमान् लाधक लौंका जी ने सम्वत १५०८-९ के वर्ष में भी अहमदाबाद में जैन धर्म का शुद्ध उपदेश किया तब ही यह लोग उसके प्रतिकूल हो गये और लौंका जी को अनुचित शब्द लिखने लग गये क्योंकि लौंका जी सूत्रानुसार उपदेश करते थे ॥

सो जो उपदेश लौंका जी ने किया था जिस समय में ही उन्हों ने एक पत्र ५८ बोल युक्त लिख किया था अपितु उसी पत्र का प्रतिरूप जीर्ण पत्र एक हमारे पास है सो उस (जो गूर्जर भाषा में है किन्तु यहां पर हिन्दी करके लिखते हैं) में से कुछ बोल वा अन्य शिक्षारूप बोल पाठकों के बोधार्थ इस स्थान पर लिखता हूं ॥

१ केवली भगवान् त्रिकालज्ञ हैं सो उन्होंने तीन काल का स्वरूप इस ज्ञान में ऐसे ही देखा है कि सम्यक् ज्ञान सम्यक् दर्शन सम्यक् चारित्र वा तप आदि के जाने बिना कोई भी जीव मोक्ष में नहीं गया नहीं जावेगा अपितु प्रतिमा के पूजने से कोई भी जीव मोक्ष नहीं गया है और नाही जावेगा नाही जाता है ॥

और नाही सूत्रों में किसी मूर्ति पूजक का अधिकार है कि अमुक जीव मूर्ति पूजते पूजते मोक्ष हो गया यह सर्वज्ञ जानलेना । सो ज्ञान दर्शन चारित्र से ही मोक्ष है यथा सूत्रकृतांग प्रथम श्रुतस्कंध अ० ११ गाथा ११॥

२ जीवराशि अजीवराशि सूत्रों में यह दोनों ही राशि कहीं हैं सो यदि कोई तीसरी राशि प्रति पादन करे तो वह निन्हव है देखो सूत्र उववाई जी । प्रश्न १९ ॥

३ जो जीव को नहीं जानता अजीव को भी नहीं जानता तो भला संयम मार्ग कैसे जान सक्ता है देखो सूत्र दशवैकालिक अ०४ ।

४ सम्यक्त्व के बिना सम्यक् ज्ञान नहीं सम्यक् ज्ञान के बिना सम्यक् चारित्र नहीं सो सम्यक् ज्ञान सम्यक् दर्शन, सम्यक चारित्र के बिना मोक्ष नहीं उत्राध्ययन सू० अ० २८ ॥

५ साधु स्वल्प और असाधु बहुत्व हैं दशवैकालिक सू०अ०७ ॥

६ साधुओं के पञ्च महाव्रत सर्वथा प्रकारे हैं देश मात्र नहीं इसीवास्ते साधुओं को मंदिर का उपदेश करना सूत्र विरुद्ध है देखो सू० दशवैकालिक अ० ४ ॥

७ ज्ञान बिना दया नहीं दया ही संयम है सू० दश० अ० ४ ॥

८ भगवान् ने अपने मुख से (अहिंसा संजमोतवो) यही धर्म बतलाया है नतु मूर्त्ति पूजा ॥

९ भगवन् श्री वर्द्धमान स्वामीजी ने शीत आहार ग्रहण किया तथा अन्य मुनियों को ग्रहण करने का उपदेश दिया देखो सूत्र आचारांग प्रथम श्रुतस्कंध अ०९ उत्राध्ययन अ०८ ॥

१० श्रावक केवली भगवान् का ही प्रतिपादन किया हुआ धर्म ग्रहण करे देखो सूत्र उववाईजी प्रश्न २० अपितु हिंसा धर्म न ग्रहण करे।

११ जो प्रवचन है सो अर्थ है किन्तु शेष सर्व अनर्थ रूप है देखो सू० उववाई प्रश्न २० ॥

१२ साधु गृहस्थादिसे कोईभी कार्य न करावे सू०नशीथ उद्देश१॥

१३ *मिश्र भाषा भाषण करने वाला जीव महा मोहनी कर्म की

---

* आत्माराम जी के जीवन चरित्र में जो गुजरावाले के विषय में लेख लिखे हैं वे सर्व अनुचित हैं ॥

प्रकृति बांधता है सू० समवायांग जी स्थान १० वां दशवा सूत्र श्रुतस्कंध ॥

१४ मिश्र भाषा सर्वथा ही त्याज्य है देखो सू० दशवै० अ ७॥

१५ सप्तनय चतुर्निक्षेप का स्वरूप अनुयोग द्वार जी सूत्र में है किन्तु भावनिक्षेप ही वंदनीय है नतु अन्य ॥

१६ साधुके अष्टादश पाप सेवनका त्याग सर्वथा प्रकारे है नतु देश । सो जब सर्वथा त्याग है तब अग्निमहादि आरम्भ करके मंदिरादि का बनवाना जिन पूजा का उपदेश करना कैसे हो सकता है, सावद्य कर्म सूत्र विरुद्ध है देखो सूत्र० सद्वाद जी साधुवृत्ति ॥

१७ जिस वस्तु पर मूर्च्छा भाव है वही परिग्रह है देखो सू० दशवैकालिक अ० ६॥

१८ भगवान् ने दोनों प्रकार का धर्म प्रतिपादन किया है सूत्र स्थानांग स्थानद्वितीय ॥

१९ गृहस्थ धर्म में द्वादश व्रत एकादश प्रतिमा ही हैं नाकि मूर्त्ति पूजा देखिये उपासक दशांग सूत्र वा दशाश्रुतस्कंध सूत्र ।

२० अर्हन् प्रभु ही सर्वज्ञवत् हैं देखो सूत्र उत्तराध्ययन अ०२३।

२१ साधु के मतसे जो प्रत्याख्यान है तो बतलाइये प्रतिमा का पूजन किस भांगे में है नवकोटी का स्वरूप देखो सू० स्थानांग स्थान ९॥

२२ राग द्वेष ही पाप कर्म के बीज हैं उत्ता०सू०अ ३२॥

२३ तपादि सुकर्म केवल निर्जरार्थे ही करे नतु अन्यार्थे ।

२४ पाप पुण्य यह दोनों ही जब क्षय होवेंगे तब ही मोक्ष होवेगी देखो सू० उत्ता अ० २१॥

२५ संयम से पतित हुए को प्रशंसा करे तो प्रायश्चित आता है देखो सूत्र नशीथ ।

२६ दोनों प्रकार का साधु भगवान ने बतलाया है भाव साधु

पण्डित मृत्यु सो किन किन जीवों का कौन कौनसा मृत्यु होता है देखो सू० उत्रा० अ० ५ ॥

२७ केवली वा १४ पूर्वधारी से लेकर १० पूर्वधारी पर्य्यन्त सर्व समभुत है नदी जी सूत्र में देख लीजिये ॥

२८ जो केवली भगवान् ने अणाचोर्ण कहे हैं वे सर्व मुनियों को त्यागनीय हैं देखो सू० दश० अ० ३ ॥

२९ भगवान् का प्रतिपादन किया हुवा धर्म एकान्त हितकारी है देखो सू० प्रश्न व्याकरण ॥

३० दयाका ही नाम पूजा है वा यज्ञ है प्रश्न व्याकरण सू०अ०६

३१ सदैव ही शान्ति का उपदेश करना देखो सू०उत्रा०अ० १० ॥

३२ ज्ञानदर्शन चारित्र ही यात्रा है ज्ञाता जी सूत्र वा भगवती जी सूत्र में इस का वर्णन है ॥

३३ भगवान् ने संसार से पार होने के मार्ग पञ्च संवरही कहे हैं प्र० व्या० ॥

३४ श्री अनुयोग्यद्वार जी सूत्र में उभय (दोनों) काल साधु साध्वी श्रावक श्राविका को षडावश्यक करने की आज्ञा है नतु मंदिर पूजने की ॥

३५ सूत्रों में पुनः २ यह उपदेश है कि विद्या चारित्र से ही मोक्ष है नतु अन्य से सू० स्थानाग स्थान द्वितीय ॥

३६ जिन वचनों में किञ्चित् मात्र भी सावद्य उपदेश नहीं है देखो सूत्र आवश्यकादि ॥

पाठकगण जब श्रीमान् लोंकाशाहजी ने इत्यादि प्रश्न पूछे वा सूत्रोक्त लोगों को सत्योपदेश सुनाया तब ही मूर्त्ति पूजक जन वा शिथिलाचारी लोक लोंकाजीको निंदा करने लग गये और उनके लिये अनुचित शब्द लिखने लगे सो यह वर्ताव इन लोगों का हठ धर्मसिद्ध करता है क्योंकि शुद्ध पूजा मुक्ति मार्ग के देने वाला है नतु द्रव्य पूजा शुद्ध पूजा कहो वा भाव पूजा कहो दोनों का एक ही अर्थ है देखिये

भाव पूजाका विधान समाधि तन्त्र ग्रन्थमें कुन्दकुन्दाचार्यके शिष्य पर्वत नामक मुनिने समाधि तन्त्रके भाषाबोधमें इस प्रकारसे लिखा है।

मैं अनंत काल से भ्रमण करता २ श्री गुरु के उपदेश से सर्व सुख रूप देव अपने ही पास देखा है और श्री गुरु के ही उपदेश से उपशम रूपी सरोवर के बीच में मैंने स्नान किया है जिस के करने से मेरा अज्ञान रूपी दाह नष्ट हो गया है और फिर मैंने अपने ही पास सिद्ध क्षेत्र देखा है पुनः अनुभूति (बोध) को मूर्तिमान शरीर में भली प्रकार से निश्चय करलिया है फिर मैंने अमूर्तिमान जीव को शान्ति रूपी जल से शुद्ध किया है और शुद्ध भाव रूपी पुष्पोंसे मैंने पूजा भी करली है फिर सम्यक्त्व रूपी दीपक जलाकर मैंने आरती भी उतारी है और फिर मैंने आनन्द रूपी धोती (कटिबंधन) पहन के भाव पूजा करी है सो इस पूजा से अनादिकाल की दाह नष्ट करके प्राणी मोक्ष में जा विराजमान होता है॥

प्रियसुज्ञपुरुषो ! यही आत्म पूजा है इस के करने से आत्मा शान्ति के मंदिर में विराजमान हो जाता है । और जन्म मरण के दुःखों से भी मुक्त होजाता है सो हे भव्य ऐसी पूजा का श्री आचार्य महाराज ने उपदेश दिया है इसलिये ही भव्य जीवों के बोधार्थ श्री महाराज का जीवन चरित्र लिखा है किन्तु हमारा तात्पर्य किसी के चित को खेदित करने का नहीं है । सो आशा है भव्य जन श्री मद्आचार्य वर्य श्री अमरसिंह जी महाराज के जीवन चरित्र को निष्पक्षता से पढ़ के अवश्य ही अपने अमूल्य मनुष्य जन्म को सफल करेंगे॥

---

## * उपसंहार *

प्रिय वर महाशयो ! सर्व विचार शील पुरुषों का मनुष्य जन्म प्राप्त करके कर्तव्य है कि वे परोपकार हितचिंता आदि सद्गुणों द्वारा अपने पार्थिव शरीर से जनतार्थ सर्वदा काल परिश्रममें उद्यत रहें जैसे

कि श्री आचार्य जी महाराज ने परोपकार किये हैं अर्थात् जिन्हों ने परोपकार की आशा से असारः संसारोऽयं, गिरि नदी वेगोपमं यौवनं, तृणाग्निसमंजीवतं, शरदभ्रच्छाया सदृशाभोगाः स्वप्न सदृशो मित्र पुत्र कलत्र भृत्यवर्गसम्बन्धः, इत्यादि सद्विचारों द्वारा परम वैराग्य तथा सुशीलता को उपार्जन कर इस क्षण भंगुर ससार को त्याग दिया और मुनि वृति ग्रहण की क्योंकि कहा है :—आदौचितेततः कायेसतां सम्पद्यतेजरा, असतांतु पुनः कायेनैवचिते कदाचन इति ॥ पुनः आपने महत् योग्यतासे स्वल्प कालमें ही श्रुत विद्याके ह्रस्व तथा गूढ़ाशय को ग्रहण किया पुनः तप,क्षमा,दया,शान्ति इनकी महान् स्वरसे उद्घोषणा की, और मृदु सकोमल सत्योपदेश रूपी तीक्ष्ण शस्त्र से भव्य जीवों के हृदयों से मिथ्यात्व रूपी कठिन तरुओं को उत्पाटन किया, पुनः सुयोग्य मनोहर व्याख्यानोंसे अर्हन्मत को उत्तेजन किया,प्रेमभाव तथा सम्पत्ती वृद्धि की, देश देशान्तरों में पर्यटन करके अनेका ही प्राणियों को अर्हन् भाषित सत्य धर्म में उपस्थित करके दृढ़ किया, और स्व आत्म शुद्धयर्थे महान् तप किया पुनः अध्यातम योग द्वारा आत्मा को निर्मल और पवित्र बनाया ओर अंत में अर्हन् अर्हन् करते तथा मा हनो, मा हनो, ऐसा उपदेश करते हुए स्वर्ग गमन हो गये ॥

इसलिये प्रियवरो, ऐसे महानाचार्य के गुणानुवाद करने से तथा इनके गुणों का अनुकरण करने से वा इनका जीवनचरित्र पढ़नेसे जीव पापरूपी मल को व्युत्सृज करते हैं इसलिये प्रार्थना है कि ऐसे महात्मा के नाम को चिरस्थायी करके मोक्षाधिकारी बनो ॥ सुज्ञेषुकिंबहुना।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!
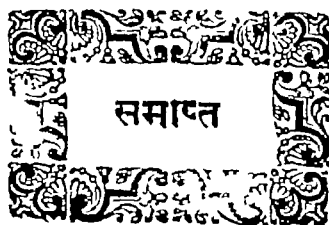
* श्रीजिनाय नमः *

# प्रस्तावना ।

सर्व विद्वज्जनों को विदित हो ! कि श्रीजैन सिद्धान्त प्रायः अर्द्ध मागधी भाषा में ही प्रतिपादन किए हुए हैं । क्योंकि जैन सूत्र (शास्त्र) श्री प्रश्न व्याकरण के द्वितीय सूत्र स्कन्ध के द्वितीयाध्याय में लिखा है कि—

(सद्दयकम्मुणाहुंतिदुवालसविहाय होइ भासा)

अर्थात—द्वादश प्रकारकी भाषायें होती हैं यथा—*प्राकृत १ संस्कृत २ मागधी ३ पिशाचकी ४ सूरसेनी ५ अपभ्रंश ६ यही षट् गद्य रूप और षट् ही पद्य रूप एवं द्वादश प्रकार की भाषायें हैं । तथा जैन शास्त्रों (सूत्रों) से यह भी प्रगट होता है कि—प्राकृतादि षट् भाषायें अनादि से आर्य लोगों की भाषा है। इसी वास्ते जैना चार्यों ने प्राकृत वा मागधी आदि भाषाओं के धातु उपसर्ग कृदन्तादि प्रकरण प्रायः संस्कृत में ही रचे हैं। तथा षेदाङ्ग शिक्षा में भी दोनों (प्राकृत संस्कृत) भाषाओं को तुल्य वर्णन किया है जैसे कि:—

---

*एकपद् भाषाओंके अन्यान्यपद ही प्रकार के प्रयोग सिद्ध होते हैं यथा सूरिमो यह शब्द प्राकृत भाषा में सूर्यका वाचक है १ भद्रक यह संस्कृत भाषा में कल्याण का नाम है २ शिमाक्षा मागधी भाषा में शृगाल को कहते हैं ३ वसन्तं पिशाच की भाषा में यह शब्द ग्रीष्म का वाचक है ४ रूक्खो सूरसैनी भाषा में इसका अर्थ वृक्ष है ५ डक्करी अपभ्रंश भाषा में अद्भुत का वाचक है ६ इत्यादि । किन्तु षड्वाहो भाषाओं के प्रयोग प्राकृत से मिलते जुलते हैं अर्थात् इनका किञ्चित् ही भेद है ॥

त्रिषष्टिः चतुः षष्टिर्वा वर्णाः शम्भु मते मताः।
प्राकृते संस्कृतेचापि, स्वयंप्रोक्ताः स्वयं भुवा ॥१॥

सो संप्रति काल में जितने संस्कृत भाषा के व्याकरण उपलब्ध होते हैं तिनसे अति प्राचीन स्वल्प परिश्रम तथा बहु फल प्रद श्री शाकटायन व्याकरण है अतः पाणिनीय व्याकरण की अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय के चतुर्थ पाद के १११ वें सूत्र में शाकटायन मुनिका मत तथा सूत्र में नाम ग्रहण किया है यथाः—

(लङः शाटायनस्यैव) अपितु स्वामी दयानन्द सरस्वती जी भी अष्टाध्यायी के कारक प्रकरण के हिन्दी भाष्य के ४८ वें पृष्ट में ऐसे लिखते हैं किः—( उपशाकटायनं वैयाकरणाः ) अर्थात् न्यून हैं अन्य व्याकरण शाकटायन व्याकरण से। सो सुज्ञ पुरुषो ! श्रीशाकटायना चार्य जैन मतानुयायिही सिद्ध हो चुके हैं। क्योंकि इस व्याकरणोपरि अनेक टीकायें जैनाचार्य्यों ने ही करी हैं। अपितु शाकटायनाचार्य भी अपने आपको श्रुत केवली देशीयाचार्य ऐसे नामसे लिखते हैं। जोकि जैनधर्मके उक्तसांकेतिक शब्द हैं। तथा जैन मतानुसारही प्रक्रिया है और चिन्ता मणि नामक टीकामेंयक्षवर्मा चार्य ऐसे प्रति पादन करते हैं कि—अत्योपयोगी यही व्याकरण है जैसे किः—

* श्लोकः *

स्वल्पग्रन्थ सुखोपाय, संपूर्णयदुपक्रमम्।
शब्दानुशासनंसार्वं महच्छासनवत्परम् ॥ १ ॥
इन्द्रचन्द्रादिभिः शाब्दैर्यदुक्तंशब्दलक्षणम्
तदिहास्तिसमस्तंच यन्नेहास्तिनतत्क्वचित् ॥२॥

इत्यादि बहुत से कथनों से स्पष्ट सिद्ध होगया कि—श्री शाकटायनाचार्य पूर्व जैनानुयायी थे, सो अधुना में भी शाकटायनाचार्य कृत शाकटायन व्याकरण वा हेमचन्द्राचार्य कृत सिद्ध हेमशब्दानुशासन (अपर नाम हेमचन्द्राचार्य कृत प्राकृत व्याकरण के) अष्टमाध्याय के सूत्रों से भव्य जीवों के प्रमोदार्थ नमस्कार युक्त महामन्त्र के णत्वादि का स्वरूप लिखता हूं। क्योंकि जैन मत में उक्त मन्त्र को मुख्य मन्त्र माना है। सो इस महा मन्त्र की व्याख्या पूर्ण रीति से करने के लिये तो महान समय की आवश्यकता है किन्तु इस समय मैंने दिग् दर्शन मात्र व्याख्योपरिहितैषी लेखनी को आरूढ किया है आकांक्षा है, कि सज्जन गण इस महा मन्त्र को अध्ययन करके अवश्यमेव ही आत्मतत्त्व को प्राप्त करेंगे ॥

मैं सर्व सुशिक्षित पुरुषों से नम्रता पूर्वक प्रार्थना करता हूं कि यदि इस व्याख्या में किसी प्रकारकी त्रुटि का देखें तो इस महा* मन्त्र के णत्वादि को शुद्ध करलेवें वा सूचना द्वारा सूचित करें ॥

---

* महाशय ! महा मन्त्र को (नमोक्कार) मन्त्र भी कहते हैं अर्थात् द्वितीय नाम महा मन्त्र का नमोक्कार मन्त्र भी है परन्तु कोई २ पुरुष नमोक्कार के स्थानोपरि नवकार मन्त्र ऐसे भी उच्चारण करते हैं सो यह भी सत्य है क्योंकि प्राकृत व्याकरण में इसका विवेचन ऐसे किया है यथा'—

रुवनमोर्वः ॥ प्रा० व्या० अ० ८ पा० ४ सू० २२६॥
अनयोरन्त्यस्य वो भवति ॥

अर्थात् इस सूत्र से रुद् और नम धातु के अन्त्य वर्ण को वकार हो गया जैसे कि—(रुवइ) (नवइ) इत्यादि इस सूत्र से (नवकार) ऐसे सिद्ध हुआ पुनः नमस्कार शब्द से नमोक्कार इस प्रकार से सिद्ध होता है जैसेकि —

अतः इस महा मन्त्रके धात्वादि की अधिक तर आवश्यकता है किन्तु कोई भी पुस्तक उक्त विस्तार युक्त दृष्टिगोचर नहीं हुआ इसी प्रयोजन से प्रेरित हो कर मैंने उक्त दो व्याकरणों के सूत्रों से इस की व्याख्या को लिखा है। सो महानाशा तथा दृढ़ विश्वास है कि पण्डित जन इस महामन्त्र की व्याख्या को पठन कर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे ॥

उपाध्याय जैनमुनि आत्मारामजी पंजाबी।

---

नमस्कारपरस्परेद्वितीयस्य ॥ प्रा० अ०८ पा०१ सू०६२॥ अनयोर्द्वितीयस्य अतओत्वं भवति ॥

इस सूत्र से नमस् शब्द के द्वितीय शब्द के अकार को अर्थात् नमस् शब्द के मकार के अकार को ओकार हो गया जैसे कि (नमोस्कार) पुनः—

क–ग–ट–ड–त–द–प–श ष-स ≍ क ≍ पामूर्ध्वंलुक् ॥ प्रा० अ०८ पा०२ सू० ७७॥ एषांसंयुक्तवर्ण सम्बन्धि मूर्ध्वंस्थितानांलुक् भवति ॥

इस सूत्र से सकार का लोप हो गया, तब (नमोकार) ऐसे रहा पुनः—

अनादौ शेषादशयोर्द्वित्वम् ॥ प्रा०अ०८पा०२सू०८९ ॥ पदस्यानादौ वर्तमानस्यशेषस्यचादेशस्यद्वित्वंभवति।

इस सूत्र से ककार द्वित्व हो गया तब परिपक्व प्रयोग (नमोक्कार) ऐसे सिद्ध हुआ, अतः पूर्वोक्त लेख से भली भान्ति तीनों प्रयोग शुद्ध सिद्ध हुए ॥

• श्री वर्द्धमानाय नमः •

# ॥ अथ महा मन्त्रः ॥

•नमो अरिहंताणं । नमो सिद्धाणं ।
नमो आयरियाणं । नमो उवज्झायाणं ।
नमोलोए सव्व साहूणं । इति ।
भगवति सूत्र शतक १ उद्देशा १ ॥

अर्थान्वयः—(नमो)(नमः) नमस्कार (अरिहंताणं) (अर्हद्भ्यः) अर्हपूजायां धातु से अत् शतृ प्रत्ययान्त हो कर अर्हत् शब्द बनता है जिसका नाम प्राकृत भाषा में अरिहंत है सो जिन अरिहंत भगवन्तों के तांई नमस्कार हो अर्थात उन को नमस्कार हो (नमो) (नमः) नमस्कार हो (सिद्धाणं) (सिद्धेभ्यः) षिधू संराद्धौ धातु से क्त प्रत्ययान्त हो कर सिद्ध शब्द बनता है अर्थात् जो सिद्ध बुद्ध, अजर, अमर, अशरीरी सर्वज्ञ सर्व दर्शी हैं तिनके तांई नमस्कार हो (नमो) (नमः) नमस्कार हो (आयरियाणं) (आचार्य्येभ्यः) आ आङ् उपसर्ग पूर्वक चर्‌गति भक्षणयो धातु से ण्यत् प्रत्ययान्त होकर सिद्ध होता है अर्थात्

---

• कोई २ पुरुष पक्षपात को मार्ग को हृदय में स्थापन करके तथा हठ करके ऐसे भी मानन करते हैं कि (णमोकार) शब्द शुद्ध है अर्थात जिस के पूर्व णकार होय वही शुद्ध है अन्य सर्व अशुद्ध हैं परन्तु ये प्राकृत व्याकरण से अनभिज्ञ है क्योंकि प्राकृत व्याकरण में व्यभिचार है यथा –

वादौ ।[प्रा० अ ८ पा० १ सू० २२९ । असंयुक्तस्या दौ वर्तमानस्य णो वा भवति ॥ णरा नरा णई नई इति ॥

आचार्य्योंके तांई नमस्कार हो,(नमो) (नमः)नमस्कार हो (उवज्झायाणं) (उपाध्यायेभ्यः) जो कि उप अधि उपसर्ग पूर्वक इङ् अध्ययने धातुसे कृदन्त का घञ् प्रत्ययान्त हो कर बनता है अर्थात् उपाध्यायों के तांई नमस्कार हो (नमो) (नमः) नमस्कार हो (लोए सव्व साहूणं) (लोक सर्वसाधुभ्यः) जो लोकृदर्शने धातु से लोक शब्द और सृ गतौ धातु से सर्व तथा साध् संसिद्धौ धातुसे उण् प्रत्ययान्त हो कर साधु शब्द इन सबकी एकत्वता से (लोए सव्व साहूणं ) ऐसे पद सिद्ध होता है अर्थात् यावत् लोक में साधु हैं तिन को नमस्कार हो।

भावार्थः--इस महा मन्त्र में यह वर्णन है कि अनन्त गुण युक्त चतुर्घाति कर्मों के नष्ट कर्त्ता और जिनके द्वादश गुण प्रगट हुए हैं परम पूज्य ऐसे गुणगुणालङ्कृत श्री अरिहंत जी महा राजों को नमस्कार हो पुनः जिनके अशरीरीसिद्ध बुद्धाजराम रेत्यादि अनेक नाम सुप्रख्याति युक्त प्रसिद्ध हैं जिन के सर्व कर्म क्षय हो गये हैं अर्थात जो कर्म रूपिरजसे विमुक्त हो गये हैं और जिन के अष्ट गुण प्रादुर्भूत हुए हैं इत्यादि अनेक सुगुणों सहित श्री सिद्ध महाराजों को नमस्कार हो अपितु जो षट् त्रिंशति गुणों युक्तमर्यादा से क्रिया करने वाले जिन को ज्ञानमें गति अधिक है तथा जो सम्यक् प्रकार से गच्छ (साधु समुदाय) की सारणा (रक्षा करना) वारणा (शिथलाचार होते हुए को) सावधान करना) साधु मण्डल को हित शिक्षा देना तथा वस्त्र पात्रादि द्वारा भी मुनियों को सहायता देनी वा परम्परा शुद्ध शास्त्रार्थ पठन कराना और जो दुर्बल अर्थात् जंघाबलक्षीण रोगादि युक्त साधु हों उन की यथा योग्य सहायता करना इत्यादि अनेक गुणों से युक्त हैं और उक्त वार्ताओं के पूर्ण करने में सदैव कटिबद्ध हैं ऐसे श्रीआचार्यों को नमस्कार हो, तथा जो पंचविंशति गुणों से अलङ्कृत होरहे हैं अर्थात् जो एकादशाङ्ग तथा द्वादशोपाङ्ग को स्वयं पढ़ते है औरोंको पढ़ाते हैं तिन शास्त्रों के नाम यह हैं यथाः—

## अथाङ्गसूत्राणि* ।

(१) श्री आचाराङ्ग जी ।
(२) श्री सूयगडाङ्ग जी ।
(३) श्री ठाणाङ्ग जी ।
(४) श्री समवायाङ्ग जी ।
(५) श्री विवाह प्रज्ञप्ति जी ।
(६) श्री ज्ञाताधर्मकथांग जी ।
(७) श्री उपासकदशाङ्ग जी ।
(८) श्री अंतगड जी ।
(९) श्री अनुत्तरोववाई जी ।
(१०) श्री प्रश्नव्याकरण जी ।
(११) श्री विपाक जी ।

## अथोपाङ्गसूत्राणि ।

(१) श्री उववाई जी ।
(२) श्री रायपसेणी जी ।
(३) श्री जीवाभिगम जी ।
(४) श्री पन्नवणा जी ।
(५) श्री जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति जी ।
(६) श्री चन्द्रप्रज्ञप्ति जी ।
(७) श्री सूर्यप्रज्ञप्ति जी ।
(८) श्री निरावलिका जी ।
(९) श्री पुप्फिया जी ।
(१०) श्री कप्पिया जी ।
(११) श्री पुप्फचूलिका जी ।
(१२) श्री वण्हिदशा जी ।

अर्थात् जो पूर्वोक्त शास्त्रों का अभ्यास स्वयं करते हैं और औरों को यथा अवकाश वा यथाअवसरपठनाभ्यास करवाते हैं और जिन के द्वारा धर्म तथा विद्या की वृद्धि हो वही कार्य करके परिफुल्लित होते हैं ऐसे परम पण्डित महान् विद्वान् दीर्घदर्शी परमोपकारी श्री उपाध्याय जी महाराज को नमस्कार हो, जो कि श्रुत विद्या की आशा से अनेक ही भव्य जीवों को संसार पाराऽवार से उद्धार करते हैं अन्यच्च नमस्कार हो सब साधुओं का जो लोक में सुगुणों से परिपूर्ण तथा निष्किंचन हैं सदा ही परोपकारी हैं और ज्ञान के द्वारा स्वआत्मा वा अन्यात्माओं के अर्थ सदैव काल सिद्ध करते हैं अपितु सर्वार्थ शक्ति गुण युक्त हैं तिन मुनियों को पुनः पुनः नमस्कार हो ।

*वस्तुतः तो द्वादशाङ्ग हैं किन्तु वर्तमान काल की अपेक्षा एकादशाङ्ग लिखे हैं ॥

प्रियवरो ! इस महा मन्त्र का पाठ अथवा यह महा मन्त्र श्री भगवती अवश्यकादि सूत्रों (शास्त्रों) में विद्यमान है यदि कोई इसे देखने की अभिलाषा करे तो उस को योग्य है कि जैन शास्त्रों का अभ्यास करे क्योंकि सूत्रों के पठन से उसे स्वयमेव ही उपलब्ध हो जायगा ॥

## ॥ अथोक्त मन्त्र के धात्वादि ॥

प्रियसुज्ञजनो ! अब उक्त महा मन्त्र के धात्वादि को लगा कर आपके सन्मुख करता हूं । जैसे कि:—(नमस्) शब्द अव्यय है सो नमस् शब्द के सकार को:—

सजूरहस्सोऽतिप्पकः स्त्रनसुध्वनसोरिः ॥

शा० व्या० अ० १ पा० १ सू० ७२ ॥

सजूष् अहन्नित्ये तयोरन्त्यस्य पदान्ते सकारस्य च रिरादेशो भवति क्वस् स्त्रन्सुध्वन्सु इत्येतान् वर्जयित्वानतिपि ॥ इति सस्यरिः इदित् ॥

इस सूत्र से रिकार हो गया, पुनः इकार की इत्संज्ञा होने से तिस का लोप हुआ अतः पश्चात् रेफ रहा । तब ऐसे रूप बना, जैसे (नम+र्) पुनः—

रः पदान्ते विसर्जनीयः ॥ शा० अ० १ पा० १ । सू० ६७ ॥ पदान्ते रेफस्य स्थाने *विसर्जनीयादेशो भवति ॥

---

*श्लोकः—शृङ्गवद्बालवत्सस्य, कुमारीस्तनयुग्मवत् ॥
नेत्रवत्कृष्णसर्पस्य, विसर्गोऽयमइतिस्मृतः ॥१॥

इस सूत्र से पदान्त के रेफ को विसर्जनीय का आदेश हुआ, तब (अम') ऐसे रूप सिद्ध हुआ पुनः—

अतोडोविसर्गस्य॥प्रा०व्या०अ०८पा०१सू०३७॥ संस्कृत लक्षणोत्पन्नस्य अतः परस्य विसर्गस्य स्थानेडो इत्यादेशो भवति ॥

इस सूत्र से संस्कृत लक्षणोत्पन्न के अत् से परे विसर्जनीय के स्थान में अर्थात विसर्ग को डो का आदेश हो गया तब ऐसे रूप बना यथा—(नम+डो) पुनः—डकार की इत्संज्ञा हो जाने के कारण से तिस का लोप हो जाता है और साथ में अ स्वरूप का लोप भी होता है तब ऐसे प्रयोग हुआ यथा (नम्+ओ) फिर—

(मनष्क शब्द रूप पर पर्वमाश्रयेत इति सन्निकर्ष') इस कथन से व्यञ्जन रूप मकार ओकारके आश्रय हुआ तो ऐसे रूप बना(नमो) अर्थात पद रूप ऐसे सिद्ध हुआ ॥

इसके अनन्तर (अरिहंताणं) इस की व्याख्या लिखते हैं यथा'— अर्ह ऐसा धातु है तिस का'—

सत्त्रश्वस्त्र्यं लृटोवाऽनितो ॥ श०अ०१ पा० ४ सू०७८॥सतिलटा भविष्यति लटश्च अतङ् वत् शतृवा भवति तङ वतानशनेतो ॥ मशानिनो ॥

इस सूत्र से वर्तमान लट् में अर्ह धातु को शतृप्रत्यय हो गया तब (अर्ह+शतृ) ऐसे रूप बन गया पुनः शकार ऋकारकी इत्संज्ञा होने से तिन का लोप हुआ तब (अर्हत) ऐसे रूप बना फिर—

उच्चार्हति। प्रा० व्या० अ०८ पा० २ सू० १११ ॥ अर्हम् शब्दे संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्व उत् अदि तौ च भवतः।

इस सूत्र में यह कथन है कि अर्हत् शब्द में संयुक्त के अन्त्य व्यञ्जन से पूर्व अर्थात् विश्लेष करके फिर हकार से पूर्व इकार उकार अकार यह तीन हो जाते हैं तब ऐसे रूप बने यथाः—

(अर्इहत्) (अर्उहत्) (अर्अहत्) पुनः (अरिहत्) (अरुहत) (अरहत्) अपितु ऐसेही *ढूंढिका वृत्ति में भी उल्लेख है पुनः—

**शत्रानशः ॥ प्रा० अ० ८ पा० ३ सू० १८१ । शतृ आनश् इत्येतयोःप्रत्येकन्तमाण इत्येता वा देशौ भवत ॥**

इस सूत्र में यह विधान है कि शतृप्रत्यय को न्त और माण द्वि आदेश होते हैं। किन्तु षष्टी का किया हुआ कार्य्य अंत के अलोपरि होता है अर्थात् अर्हत् शब्द के तकार को (न्त) ऐसे आदेश हो गया तब (अरिहन्त+अरुहन्त+अरहन्त) ऐसे बन गये † तो :—

**ङ ञ ण नो व्यञ्जने । प्रा० अ० ८ पा० १ सू० २५ ॥ ङ ञ ण न इत्येतेषांस्थाने व्यञ्जने परे अनुस्वारा भवति ॥**

---

*ढूंढिका—उत ११ व अर्हत७१ अर्हत अर्हतीति अर्हीव् अच् प्रत्ययः लोकात् अर्ह इतिजाते र्ह इति विश्लेषे अनेन प्रथमेह पूर्वे उ द्वितीये ह पूर्वे अ तृतीये ह पूर्वे इः सर्वत्र लोकात् ११ अतः सेर्डोः अरुहो। अरहो अरिहो। अर्हतोनि अर्हत श्रुगद्विषार्हः शतृशतुस्तुत्ये शब्द तृ प्रत्ययः अतल्लोकात् अर्हतत्चमाणो अतः स्थानेत्त व्यञ्जनाद्दंतेऽत लोकात् अनेन र्ह इति विश्लेषे प्रथमं ह पूर्वे उः द्वितीय अः तृतीये इः लोका ११ अरुहन्तो अरहन्तो अरिहन्तोः ॥ १११ ॥

†द्वितीय विधि इस प्रकार से भी है यथा (अरिहत्+अरुहत्+अरहत्) ऐसे प्रयोग स्थित हैं फिरः—

इस सूत्र से नकारको अनुस्वारादेश हो गया तब (अरिहंत+अर्हंत+अरहंत) ऐसे प्रयोग बने, पुनः नमस्कारार्थ में—

शक्तार्थवषण्नमः स्वस्तिस्वाहा स्वधाहितैः ॥ शा० अ० १ पा० ३ सू० १८२ । शक्तार्थैर्वषडादिभिश्च युक्तेऽप्रधानार्थेवर्तमाना च्चतुर्थी नित्यंभवति ॥ चैत्रायशक्तोमैत्र । मल्लायप्रभवतिमल्ल । पुरुषायालम्पुरुष । अग्नयेवषट् । अर्हतेनमः धर्मायस्वस्ति । इन्द्रायस्वाहा । गुरुभ्यस्स्वधा । सर्वस्मैहित ॥

---

उगिदचोऽनधावे ॥ शा० अ० १ पा० २ सू० ११४ । उगितोऽञ्च तेश्चनम् भवति शावनट्सुटि परे नेधावे ॥

इस सूत्रमें यह विधान है कि जिसका उक्(उ+ऋ) इसंज्ञा वाला हो तिसको और अञ्चधातु को भी नम हो जाता है शि और अनट्सुट् परे होते हुए अपितु धपादिकों को नहीं होता जिस कारण से अर्ह भी उदित होने से नम् हुआ (स्त्रियां दसपादयः परे भवति) इस कथन से ऐसे रूप सिद्ध हुए यथा (अरिहनम् +अर्हनमत्+अरहनमत् ) फिर (समासिता) इस कथन से अकार मकार की इसंज्ञा हुई पुनः शेष रूप (अरिहन्त् ) इत्यादि ऐसे रहे फिर:—

व्यञ्जनाददन्ते ॥ शा० अ० ८ पा० ४ सू० २३९ ॥ व्यञ्जनान्ताद्धातोरन्ते अकारो भवति ।

इस सूत्र में यह विधान है कि व्यञ्जनान्त (हलन्त) धातु के अन्त में अकार का आगम होता है तब हल् अकार स्वरान्त हुआ तो इस प्रकार रूप बने यथा—(अरिहन्त, अर्हन्त अरहन्त) इति ॥

शाकटायन व्याकरण के इस सूत्रसे चतुर्थी विभक्ति के बहुवचन भ्यस् प्रत्ययकोअवप्राप्ति थी, किन्तु:—

**चतुर्थ्याः षष्ठी ॥ प्रा० व्या० अ०८ पा० ३ सू० १३१ ॥ चतुर्थ्याः स्थाने षष्टी भवति ।**

प्राकृत व्याकरण के इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति के स्थानोपरि षष्टी विभक्ति हुई, तब (अरिहन्त) शब्द को षष्टी का बहुवचन आम् प्रत्यय होने से (अरिहत+आम्) ऐसे रूप होगया पुनः—

**जस् शस्ङसित्तोदोद्वामिदीर्घः ॥ प्रा० अ०८ पा० ३ सू०११ ॥एषु अतो दीर्घो भवति ॥**

इस सूत्र से अरिहंत शब्द के तकार का अत् दीर्घ होजाने से (अरिहंता+आम्) ऐसे बन गया तदनन्तर:—

**टा आमोर्णः ॥ प्रा० अ० ८ पा० ३ सू० ६ ॥ अतः परस्य टाइत्येतस्य षष्टी बहुवचनस्य च आमोंणो भवति ॥**

इस सूत्र से आम् प्रत्यय को णकारादेश होगया तो (अरिहंता+ण) ऐसे रूप बन गया, तत्पश्चात् :—

**क्त्वा स्यादेर णस्वोर्वा ॥ प्रा० अ० ८पा० १ सू० २७ ॥ क्त्वायाः स्यादीनांच यौणसूतयोरनुस्वारो ऽन्तोवाभवति ॥**

इस सूत्र से णकार को विकल्प से अनुस्वार भी हो जाता है तब एक पक्ष में (नमोअरिहंताणं+नमोअरुहंताणं+नमोअरहंताणं) और द्वितीय पक्ष में (नमोअरिहंताण+नमोअरुहंताण+नमोअरहंताण) इत्यादि तीन प्रयोग इस प्रकार सिद्ध हुए ॥

सा पूर्व सूत्रों से तीन रूपों का पक्ष हो भर्थ है किन्तु पर्यायार्थ तीन हैं जैसे कि—

जो कर्मादि शत्रुओं को हनन करे तथा सर्वज्ञ सर्व दर्शी हो वह भरिहंत भपित् —

जिस की पुनरावृत्ति संसार चक्र में न होवे भर्थात् जो जन्म मरण से रहित हो सो भरहंत, किन्तु उक्त दो भर्थ गौण हैं तथा जो सब का पूज्यनीय वा सर्व का ज्ञाता सर्वोत्तम है सो भरहंत क्योंकि धातु का मुख्यार्थ यही है॥ तथा नाम माला वृत्ति में हेमचन्द्राचार्य्य भर्हन् शब्द विषय ऐसे भी लिखते हैं, तथा च पाठः—

अर्हति चतुस्त्रिंशदतिशयान्सुरेन्द्र कृतामशोका द्यष्टमहाप्रातिहार्य्य रूपांपूजांइतिवाअर्हन् अर्हयोग्य त्वे अर्हमहपूजां वा अर्हप्रशसायामिति शतृप्रत्यय उगित्वात्मितिनुम् अर्हन्तो अर्हन्तः इत्यादि ॥

अर्हन् सुरनरवरादिसेवाइति अर्हपूजायां उस्मा द्वाहलकात् तृभवहित्रसिभासीरणादि नाआशिष्यर्थ इतिवान्त इत्यनादेशेअर्हत इत्यत्रतोपिअर्हतीति पचाद्यनिपृषोदरादित्वा न्मु मागमेअर्हमिति ॥

॥ इति भरिहंतार्थ पद की साधनिका ॥

---

## ॥ अथ सिद्ध शब्द की साधनिका ॥

---

नमस् भव्ययके योग शब्द वा पूर्वक् हो सिद्ध है परन्तु (सिद्धार्थ) इस का सिद्धयें विधु संरादी ऐसे धातु है जिस के ऊपर को तसक्ता दान व निबन्ध और हुआ पुनः (सिध) ऐसे शब्द सब रहा। सिद्ध-

आदेः ष्णोऽष्वक्कष्टच्याष्टीवःस्नम् ॥ शा० अ० ४ पा० २ सू०२६१ । धातो रादेःषस्य सो भवति णस्यनः नष्वक्कष्टच्याष्टीवाम् ॥

इस सूत्र से धातु के आदि षकार को सकार होगया तब(सिध) ऐसे रूप बना पुनः—

क्त क्तवतू ॥ शा० अ० ४ पा० ३ सू० २०४ ॥ धातोर्भूते क्त क्तवतू भवतः ॥ कोताविती ॥

इस सूत्र में यह विधान है कि धातु को भूतार्थ में क्त क्त वत् प्रत्यय होते हैं। इसी कथन से सिध धातुको क्त प्रत्यय हुआ तो ऐसे रूप बना यथा (सिध्क्त) फिर ककार की इत्सञ्ज्ञा होने से तिसका लोप है तब (सिध्+त) ऐसे हुआ पुनः—

अधः ॥ शा० व्या० अ० १ पा० २सू० ८० ॥ अधाञो झषन्ताद्धातोः परयोस्तस्थयोर्धो भवति।

इस सूत्र से तकार को धकार होगया, तब ऐसे प्रयोग हुआ (सिध्+ध) फिरः—

जषि जश् । शा०व्या० अ० १ पा० १ सू०१३६ । जरःस्थाने जशादेशो भवति जषि परे ॥

इस सूत्र में यह कथन है कि जर् के स्थान में जश् का आदेश होवे जष् प्रत्ययाहार परे होते हुए इसी न्याय से हल् धकार को हल् दकार हो गया, यथा (सिद्+ध) पुनः

(अनच्कं शब्दरूपं परवर्ण माश्रयेत्)

इस कथन से(सिद्ध) शब्द बन गया फिर(सिद्धाण) ऐसा बनाने के वास्ते सिद्ध शब्द को चतुर्थी विभक्ति के स्थानो परि षष्टी विभक्ति का बहु वचन आम् हो गया यथा, (सिद्ध+आम् )इति स्थितेपश्चात् ।

टा आमोर्ण ॥ प्रा० व्या० अ०८ पा०३ सू०६।

इस सूत्र से पूर्ववत् आम प्रत्यय को णकारादेश हुआ यथा(सिद्ध+ण) फिर :—

जस् शस् ङसित्तो दोद्वामि दीर्घ ॥ प्रा० व्या० अ० ८ पा० ३ सू०१२ ॥

इस से सूत्र मान्यत् सिद्ध शब्द का अकार दीर्घ हो गया जैसे (सिद्धा+ण)पश्चात्।

क्त्वास्यादेरणस्वोर्वा ॥ प्रा०अ०८ पा०१ सू०२७ ॥

इस सूत्र से णकार को विकल्प से अनुस्वार हो गया तब यदि पक्षरूप (नमो सिद्धाणं) वा (नमो सिद्धाण) ऐसे सिद्ध हुए।

अपितु "सिद्ध" शब्द पिभो शास्त्रे मा ङ्गल्ये च

इस धातुसे भी बन जाता है किन्तु शेष विधिविधान पूर्ववत् ही है॥

॥ इति सिद्धाणं पदकी साधनिका ॥

---

## ॥ अथ आचार्य शब्द की साधनिका ॥

---

नमस् शब्द पूर्ववत ही सिद्ध होता है अतः आचार्य शब्द आङ् उपसर्ग मर्यादा युक्त अर्थ में जो व्यवहृत है सो पूर्व होने से पुनः चर्‌गति भक्षण्योः धातु को ऋहलो का ण्यण् प्रत्यय करने से आचार्य शब्द बनता है जैसे कि (आ+चर्) ऐसे रूप है पुनः :—

ण्यण् ॥ शा० व्या० अ० ४ पा० ३ सू० ६ ॥

ऋहलोर्ण्यण् प्रत्ययो भवति ॥

इस सूत्र से आङ् पूर्वक चर धातु को ण्यण् प्रत्यय हो गया फिर णकारित्वो अर्थात् णकार णकार को इत्संज्ञा होने से तिन का लोप

है अपितुङ्कार की भी इत्सञ्ज्ञा होती है तब (आङ्+चर्+ण्यण्) ऐसे रूप से (आ+चर्+य) ऐसे रूप शेष रहा फिर :—

ञिणत्यस्याः ॥ शा० अ० ४ पा० १ सू० २३० ॥
धातो रुपान्त्यस्यात् आद्भवति । ञितिणिति च प्रत्ययेपरे ॥

इस सूत्र में यह विधान है कि जिस प्रत्यय का ञ्ण् लोप हो गया होतो धातु के उपान्त (अन्त्यस्समीपमुपान्त्यम्) अत् को आत हो जावे, इस रीत्यनुसार उपान्त चकार के अत् को आत् हुआ जैसे :—

(आ+चार्+य) पुनः (अनचकंशब्दरूपंपर वर्ण माश्रयेत्) ॥

इस वाक्य से ऐसे शब्द बन गया, यथा (आचार्य) फिर :—

नमस् शब्द पूर्व करने से तथा नमस्कारार्थ में चतुर्थी विभक्ति का बहु वचनान्त होने से ऐसे सिद्ध हुआ, (नमःआचार्येभ्यः) इति ॥

अब प्राकृत में इस के रूप बनाकर दिखाते हैं उपसर्ग, धातु, प्रत्यय यह तो सर्व प्राग्वत् ही है अपितु आचार्य शब्द के चकार के वास्ते प्राकृत के व्याकरण में यह सूत्र प्रति पादन किया गया है जैसे कि :—

आचार्येचोच्च ॥ प्रा० अ० ८ पा० १ सू० ७३ ॥
आचार्य शब्दे चस्यात् इत्वम् अत्वंचभवति ॥

अर्थात् आचार्य शब्द के चकार को अत् इत् यह दो आदेश होते हैं पुनः—

ऐसे रूप हुए, यथा, (आचर्य) आचिर्य) पश्चात्—

क-ग-च-ज-त-द-प-य-वां प्रायोलुक् ॥
प्रा० अ० ८ पा० १ सू० १७७ ॥

स्वरात्परेषामनादि भूतानामसंयुक्तानांकग च जतदपयवाना प्रायोलुग् भवति ॥

इस सूत्र से (भावर्य) ऐसे रूप के मा कार का लोप होगया। जैसे (भामर्य) (भाइर्य) फिर —

अवर्णोयश्रुति ॥ प्रा० व्या० अ० ८ पा० १ सू० १८० ॥ कगचजेत्यादिनालुकिसति शेष अवर्ण अवर्णात्पराळघुप्रयत्नतरयकार श्रुति भवति ॥

इस सूत्र में यह वर्णन है कि जिसके क ग च ज त द प य इत्यादि लोप हो गए हों। शेष जो अकार रहजावे तो उस के स्थान पर यकार भी हो जाता है सो इसी नियम से इस स्थान में शेष अकार के स्थानोपरि यकारादेश होगया तब ऐसे रूप हुए (भामर्य) (भायर्य) (भाइर्य) पुनः—

स्याद्भव्यचैत्यचौर्यसमेषुयात् ॥ प्रा० अ०८ पा० २ सू० १०७ ॥ स्यादादिषुचौर्य शब्देन समेषु-संयुक्तस्य यात् पूर्वइद् भवति ॥

इस सूत्र में यह कथन है कि स्याद भव्य चैत्य चौर्य इत्यादि शब्दों में स्थित शब्द से पूर्व इत् हो जाता है इसी न्याय से रेफ यकार के योग अर्थात् स्थित होने से रेफ को इत होने से ऐसे रूप हुआ, (भायरिय) पुन: शब्दों का बहु वचन आम् प्रत्यय हुआ तो (भायरिय+आम्) ऐसे रूप हुआ पुन: आम् को (टा आमोणः) इस सूत्र से आम् को णकार होजाने से (भायरिय+ण) हुआ पश्चात —

(जस् शस् ङसित्तोदामि दीर्घः)

इस सूत्र से पूर्व स्वर दीर्घ होगया यथा (भायरिया+ण) पुनः—

(क्त्वास्यादेर्णस्वोर्वा) इस सूत्र से णकार का विकल्प से अनुस्वार हो गया, फिर परिपक्करूप ऐसे हुए (नमो आयरियाणं) वा (नमो आ अरियाणं) वा (नमो आइरियाणं) तथा (अर्णोवयश्रुति) इस सूत्र से यकार को अकार भी हो जाता है तब (आयरिअ) ऐसा रूप बना, किन्तु:—

अतोरिआररिज्जरीअं ॥ प्रा० अ० ८ पा० २ सू० ६७॥ आश्चर्येअकारात्परस्यर्यस्यरिअ अर रिज्ज रीअइत्येते आदेशा भवन्ति ॥

इस सूत्र की अत्र प्राप्ति नहीं है और शेष कार्य प्राग्वत् ही है ॥

॥ इति आयरियाण शब्द की साधनिका ॥

---

## ॥ अथ उपाध्याय शब्दकी साधनिका ॥

उप और अधि उपसर्ग पूर्वक इङ् अध्ययने धातु को घञ् प्रत्ययान्त हो कर उपाध्याय शब्द बनता है जैसे कि (उप+अधि+इङ्) ऐसे स्थित है पुनः—

इङः । शा० अ० ४ पा० ४ सू० ४॥ इङोऽकर्तरि घञ् भवति । अध्यायः । उपाध्यायः ।

इस सूत्र से इङ् अध्ययने धातु को घञ् प्रत्यय की प्राप्ति हुई तब (उप+अधि+इङ्+घञ्) ऐसे बना पश्चात् ङ् घ् ञ् इन की इत्सञ्ज्ञा होने से लोप हुआ और शेषः—(उप+अधि+इ+अ) ऐसे हो रहा, अपितु अकार की इत्सञ्ज्ञा होने से—

आरेचोऽक्ष्वावे । शा०अ०२पा०३सू०८४॥ प्रकृतेरचा मादेरचः आ आर् ऐच् इस्येते आवेशा भवन्ति ञिति णिति च तद्धिते प्रत्यये परे ॥

इक् धातु के इकार को इस सूत्र से ऐकार हो गया पुनः—
(उप+अधि+ऐ+अ) ऐसे प्रयोग हुआ फिर—

एचोऽय वायाव् ॥ शा० अ०१ पा०१ सू०६९।
एचः स्थानेयथा सख्य अय् अव् आय् आव् इस्येते आदेशा भवन्ति अचि परे ॥

इस सूत्र से ऐकार के स्थान में आय होने से (उप+अधि+आय्+अ) ऐसा प्रयोग बना तो (अनवर्क शब्द रूप पर रूप आश्रयेत) इस वचनानुसार (उप+अधि+आय) ऐसे रूप बन गया फिर—

दीर्घ ॥ शा०अ०१ पा०१ सू०७७ ॥
अकःस्थानेपरेणाचा सहितस्य तदासन्नो दीर्घो नित्य भवत्यचि परे । यथा दण्ड अग्र दण्डाग्रं ॥

इस सूत्र से उप उपसर्ग के पकारका अकार और अधि उपसर्ग के आदि का अकार उभय मिलकर दीर्घ होने से(उपाधि+आय) ऐसे रूप बना पुनः—

अस्वे । शा० अ० १ पा०१ सू० ३ ॥
इक स्थाने यञादेशो भवति अस्वेऽचि परे स च अथवा इकः परोयञ् भवति अस्वेऽचि परे । दध्यत्र ॥

इस सूत्र से इकार को यकार होगया तब (उपा ध् य् आय) ऐसे रूप बना पुनः —

भनन्कंशाब्देति वचन से(उपाध्याय) रूपहुआ, पुनः नमस्कारार्थ में

(शक्तार्थ वषण्नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा हितैः)

शाकटायन व्याकरण के इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का बहुवचन
ाम् प्रत्यय होने से तथा नमस् अव्यय पूर्व होनेसे (नमः उपाध्या ये
ः) ऐसा परिपक्व रूप संस्कृत भाषा में तो सिद्ध होगया किन्तु अब
ाकृत में जिस प्रकार रूप बनता है सो देखिये। यथा (उपाध्याय)
से स्थित हैं तबः—

ह्रस्वःसंयोगे ॥ प्रा० अ० ८ पा० १ सू० ८४ ॥
दीर्घस्य यथादर्शनं संयोगे परे ह्रस्वो भवति ॥

इस सूत्र से (उपा) का पकार ह्रस्व होगया तो (उपध्याय) ऐसे
रूप बना पुनः—

साध्वस ध्य-ह्यांझः ॥ प्रा० अ० ८ पा० २ सू० २६॥
साध्वसेसंयुक्तस्यध्यह्ययोश्चझोभवति ॥

इस सूत्र से (ध्य) मात्र को झ हुआ फिर (उपझाय) ऐसा प्रयोग
बना तो :—

पोवः ॥ प्रा० अ० ८ पा० १ सू० २३१ ॥ स्वरात्प-
रस्यासंयुक्तस्यानादेः पस्यप्रायोवो भवति ॥

इस सूत्र से पकार को वकार होजाने से ( उवझाय ) ऐसे रूप
बना, पुनः—

अनादौशेषादशयोर्द्वित्वम् ॥ प्रा०अ०८पा०२सू०८९
पदस्यानादौवर्तमानस्यशेषस्यादेशस्यचद्वित्वंभवति

इस सूत्र में यह वर्णन है कि आदि भिन्न आदेश रूप झकार
के दो रूप होजाते हैं जैसे कि :—(उवझ्झाय) पश्चात्।

द्वितीयतुर्ययोरुपरिपूर्वः ॥ प्रा०अ०८ पा०२सू०९०।
द्वितीयतुर्ययोर्द्वित्वप्रसंगेउपरिपूर्वौभवत' द्वितीयस्यो
परिप्रथमश्चतुर्थस्योपरितृतीय इत्यर्थ ॥

इस सूत्र में यह कथन है कि चतुर्थ वर्ण जो द्वित्व किया है जो पूर्वचतुर्थ के स्थान में तृतीय वर्ण होजाता है। जैसे (उवज्झाय) पुनः- आम् प्रत्यय करने से (उवज्झाय+आम्) फिर (टामामोर्णः) इस सूत्र से आम् को णकार होगया तो (उवज्झाय+ण) ऐसे बना तदनन्तर (क्त्वास्यादेर्णस्वोर्वा) इस सूत्र से अनुस्वार होगया। यथा (उवज्झाय+णं) पुनः—(अस्यादसंयुक्तस्यादो दीर्घः) इस सूत्र से यकार दीर्घ होगया। तब (नमोउवज्झायाणं) (नमो उवज्झायाणं) ऐसे दो रूप सिद्ध हुए अर्थात् जो सूत्र विद्या के पढ़ाने वाले हैं तिन को नमस्कार हो।

॥ इति उवज्झायाणं पद की साधनिका ॥

---

# *अथ नमोलोए सव्वसाहूणं शब्द की साधनिका*

---

नमः अव्यय पूर्ववत् हो है अपितु "लोक" इसीने धातु को :—
णवुलश्चिलिहादिभ्यश्च । शा०अ०४पा०१ सू०८५।
धातोर्लिहादिभ्यश्च ण्वुल् अच् प्रत्यया भवन्ति
णचाविती ॥

इस सूत्र से अच् प्रत्ययान्त करके लोक शब्द बना फिर तदनन्तर (लोके) ऐसे पाठ हुआ फिर :—

कगचतदयवांप्रायो लुक् ॥ प्रा० अ०८ पा० १ सू० १७७॥ स्वरात्परेषामनादि भूतानाम संयुक्तानां कगचतदपयवानां प्रायोलुग् भवति ॥

इस सूत्र से ककार का लोप होने से शेष एकार अर्थात् (लोप) ऐसे प्रयोग हुआ, फिर *सर्व शब्द को:—

सर्वत्रलवरामवन्द्रे ॥ प्रा० अ० ८ पा० २ सू० ७९ ॥ वन्द्र शब्दादन्यत्र लवरांसर्वत्र संयुक्तस्योर्ध्वमधश्चस्थितानांलुग् भवति ॥

इस सूत्र से संयुक्त रेफ का लोप होगया जैसे (सव) अपितु (अनादौ शेषादयोर्द्वित्वम्) इस सूत्र से शेष वकार द्वित्व हो गया यथा:—( सव्व ) अर्थात् (नमोलोएसव्व) रूप बना फिर (राधसाधसंसिद्धो ) इस साध् धातु को:—

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्यउण्॥

शा० उणादि० पा० १ सू० १ ॥ डुकृञ् करणे। वा गतिगन्धनयोः। पा पाने। जि अभिभवे। डुमिञ् प्रक्षेपणे। ष्वद् आस्वादने। साधसंसिद्धौ। अशूव्याप्तौ। एभ्योऽष्टधातुभ्यउण् प्रत्ययः स्यात् ॥ साध्नोतिपरकार्यमितिसाधुः सज्जनः॥

---

*सर्वनिघृष्वरिष्वलष्व शिवपद्वप्रह्वष्वाः अतन्त्रे ॥ उणादिवृत्ति। पा० १ सू० १५३ ॥ स र्वादयोवन प्रत्ययान्तानिपात्यतेऽतन्त्रेऽकर्तरि सृ गतौ। सर्व, निरवशेषम्॥

इस सूत्र से डम् प्रत्ययान्त होने से साधु शब्द सिद्ध हुआ, फिर:—

ख घ थ धभांह ॥ प्रा० अ०८ पा०१सू०१८७॥

स्वरात्परेषामसंयुक्ता नामनादि भूतानां खघथ धभ इत्येतेषांवर्णानां प्रायोहो भवति ॥

इस सूत्र से धकार को हकार होगया, तब (णमोलोपसम्वसाह) ऐसे रूप बना, पुनः—

षष्ठी का बहु वचन आम् प्रत्यय हुआ, जिस को (टा आमोर्णः) इस सूत्र से णकार का आदेश हुआ यथा (णमोलोपसम्वसाहु +ण) फिर —

(जस् शस् ङसित्तोदोद्वामिदीर्घ) इस सूत्र से पूर्व स्वर दीर्घ होगया, यथा —

(णमोलोपसम्वसाहू+ण) पुन —

(क्त्वास्यादेर्णस्वोर्वा) इस सूत्र से णकार को विकल्प से अनुस्वार हो गया तब पक्ष तथा शुद्ध प्रयोग (णमोलोपसम्वसाहूणं) वा (णमोलोपसम्वसाहूण) ऐसे सिद्ध हुआ अपितु अर्ध प्राकृत हो है॥

---

॥ इति णमोलोपसम्वसाहूणं पद की साधनिका ॥

## * अथोक्तरूपसमुच्चयः *

| | |
|---|---|
| १-(नमो अरिहंताणं) | (णमो अरिहंताणं) |
| (नमो अरिहंताण) | (णमो अरिहंताण |
| (नमो अरुहंताणं) | (णमो अरुहंताणं |
| (नमो अरुहंताण) | (णमो अरुहंताण) |
| (नमो अरहंताणं) | (णमो अरहंताणं) |
| (नमो अरहंताण) | (णमो अरहंताण) |

---

| | |
|---|---|
| २-(नमो सिद्धाणं) | (णमो सिद्धाणं) |
| (नमो सिद्धाण) | (णमो सिद्धाण) |

---

| | |
|---|---|
| ३-(नमो आयरियाणं) | (णमो आयरियाणं) |
| (नमो आयरियाण) | (णमो आयरियाण) |
| (नमो आयरिआणं) | (णमो आयरिआणं) |
| (नमो आयरिआण) | (णमो आयरिआण) |
| (नमो आइरियाणं) | (णमो आइरियाणं) |
| (नमो आइरियाण) | (णमो आइरियाण) |

---

| | |
|---|---|
| ४-(नमो उवज्झायाणं) | (णमो उवज्झायाणं) |
| (नमो उवज्झायाण) | (णमो उवज्झायाण) |

---

| | |
|---|---|
| ५-(नमो लोएसव्वसाहूणं) | (णमोलोएसव्वसाहूणं) |
| (नमो लोएसव्वसाहूण) | (णमो लोएसव्वसाहूण) |

# अथ चूलिका पञ्च पदों का माहात्म्य रूप गाथा।

---

एसोपंच नमोक्कारो, सव्वपावपणासणो।
मंगलाणंच सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

अर्थान्वयः—(एसो) (एषः) यह (पंच) (पञ्च) पञ्च (नमोक्कारो) (नमस्कारः) नमस्कार रूप पद (सव्व) (सर्व) सारे (पाव) (पाप) पापों के (पणासणो) (प्रणाशकः) प्रणाशक हार हैं अर्थात् पापों के नष्ट करने वाले हैं (मंगलाणं) (मंगलानां) मंगलीक है (च) (च) और अपितु अव्यय है (सव्वेसिं) (सर्वेषां) सर्वस्यानां परि पढ़े हुए (पढमं) (प्रथमं) प्रथम अर्थात् द्रव्यादि पदार्थों से पूर्व (हवइ) (भवति) होता है (मंगलं) (मङ्गलम्) मङ्गलीक॥

भावार्थः—इस महा मन्त्र के पाञ्च ही नमस्कार रूप पद सर्व पापों के नाश करने वाले हैं तथा मंगलीक और सर्व स्याद्वादपरिपाक किये हुए द्रव्यादि पदार्थों से भी पहिले मंगलीक हैं क्योंकि अनंत गुण युक्त महा मंत्र है।

---

॥ अथ ओम् शब्द निर्णयः॥

---

प्रियसुज्ञ पुरुषो!—पाञ्च पदों का ही बीज रूप ओम शब्द बनता है जैसे कि:—

## ॥ गाथा ॥

अरिहंता असरीरा, आयरियउवज्झाया।
मुणिणो पञ्चक्खर निप्पण्णो ओंकारो पञ्चपरमेट्ठी॥

अर्थान्वय,--(अरिहंता) (अर्हन्तः) अर्हन् शब्द का आद्यवर्ण अकार है (असरीरा) (अशरीराः) अशरीरी शब्द जोकि सिद्ध पद का ही वाचक है तिसका भी आद्य वर्ण अकार है पुनः(आयरिया) (आचार्या) आचार्य पद का आद्यवर्ण आकार है तथा (उवज्झाया) (उपाध्यायाः)उपाध्याय पदका आद्यवर्ण उकार है और (मुणिणो) (मुनिनः) मुनि पद का आद्यवर्ण स्वर रहित अर्थात् व्यञ्जन रूप मकार है इन पाञ्चों को एकत्व करना (पंचक्खर) (पञ्चाक्षर) पांचाक्षर जैसे कि (अ+अ+आ+उ+म्) (निप्पन्नो) (निष्पन्नः) निष्पन्न (ओंकारो) (ओंकारः)ओम् शब्द है सो (पंच परमेट्ठी) (पंच परमेष्ठि) पंचपरमेष्ठि का ही वाचक है ॥

भावार्थः—पांच पदों में से पूर्व के दो पदों के आद्य वर्ण अकार हैं तृतीय पद का आद्यवर्ण आकार है तथा चतुर्थ पद का आद्य वर्ण उकार है और पञ्चवें पद का आद्यवर्ण मकार है अब पांचों की एकत्वता से :—

(अ+अ+आ+उ+म्) ऐसा प्रयोग स्थित है पुनः—

**दीर्घः ॥ शा० अ० १ पा० १ सू० ७७ ॥**
**अकः स्थाने परेणाचा सहितस्य तदासन्नो दीर्घो नित्यं भवत्यचि परे ॥**

इस सूत्र से अकार दीर्घ होगया, तब (आ+ आ+ उ+ म्) ऐसे रूप हुआ, तो :—

**ओमाङिपरः ॥ शा० अ० १ पा० १ सू० ८६ ॥**
**अवर्णस्य स्थाने साचः परोऽजादेशो भवतिओं शब्देआङादेशेचपरे ।**

इस सूत्र से आचार्य पद का आकार पर रूप होगया, तब अोव (आ+व+म्) ऐसे रहा॥

इक्चेअर् ॥ शा० अ०१ पा०१ सू०८२ ॥
अवर्णस्यस्थानेपरेणाचासह्रितस्यक्रमेण एङ् अर् इत्यादेशाभवन्ति इकिपरे ॥

इस सूत्र से अवर्ण उवर्ण एकत्र होने पर ओकार होगया। तब ऐसे रूप हुआ।

जैसे कि —(ओ+म्) पुनः —

मम्मोह्रलिनो ॥ शा० अ० १ पा०१ सू० १११ ॥
ममागमस्यपश्चान्तस्यच मकारस्य परस्तोऽनुनासिकोऽनुस्वारश्चपर्य्यायेण भवति हलिपरे।

इस सूत्र से मकार का स्वर रहित व्यञ्जन रूप है तिस का अनुस्वार होगया। तब (ओं) ऐसे रूप बन गया। पुनः—

आम प्रारम्भे ॥ शा० अ०२ पा०३ सू०२१ ॥
प्रारम्भेवर्तमानस्योमःप्लुतोवाभवति ॥
ओ३म् स्वपर्मपवित्रम्। आ३म् श्री शान्तिरस्तु सुखमस्तु।प्रारम्भेति किम् ओम् इत्यादि ॥

इस सूत्र में यह विधान है कि प्रारम्भ(आदि)में वर्तमान ओम्

---

* किसी २ व्याकरण का ऐसा भी लेख है यथा—

श्लोकः-अदीर्घादीर्घतायाति नास्तिदीर्घस्यदीर्घता।
पूर्वंदीघस्वरंदृष्ट्वा,परलोपोविधीयते ॥१॥

विकल्प से *प्लुत हो जाता है ॥

उक्त सूत्रों से ओम् शब्द पञ्च पद का ही वाचक सिद्ध हुआ ॥

इस लिये विद्वानों ने ओम् शब्द को पांच पदों का बीज भूत माना है।

॥ इति शुभम् ॥

॥ इति महामन्त्र तत्त्व प्रकाशः समाप्तः ॥

---
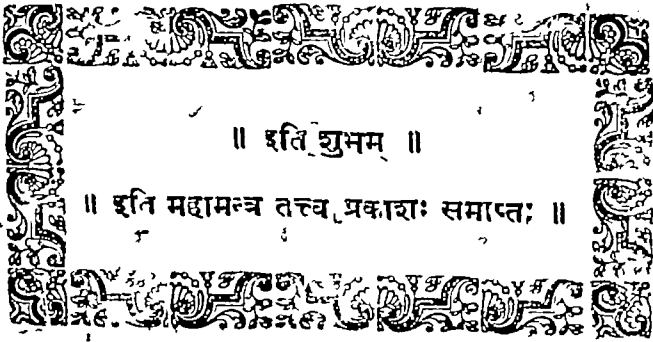
*श्लोकः—जानुप्रदक्षिणीकृत्य, नद्रुतंनविलम्बितम् ।
अङ्गुलिस्फोटनंकुर्यात् सामात्रेतिप्रकीर्तिता ॥१॥
चटकोरौत्येकमात्र द्विमात्रंरौतिवायसः ।
त्रिमात्रंतुशिखीरौति ह्रस्वदीर्घप्लतक्रमात् ॥२॥
॥ इति ॥

श्री वीतरागाय नमः।

# * प्रार्थना *

प्रियभ्रातृ गणों यह अमूल्य अहिंसामय सत्यपदार्थों का उपदेष्टा श्री जैनमत आपके हाथ में किस प्रकार से आया है। जिस के धारण करने से आप जगत में सदाचारी कहलाते हैं। जिस के धारण करने से आप परोपकारियों के अग्रणीय बनते हैं। जिस के धारण करने से आप मोक्षमार्ग के साधक होते हैं। जिस के प्रभाव से आप सम्यक ज्ञान सम्यक दर्शन, सम्यक चारित्र के आराधिक होना चाहते हैं॥

मित्रो यह धर्म केवल अर्हन् देवका भाषित् पूर्वाचार्यों की ही कृपा से आप के हाथ में आया है। देखिये आपके पूर्वाचार्यों ने अनेक प्रकार के संकट सहन करके इस पवित्र जैनधर्म की रक्षा करी और सहस्रों नूतन ग्रंथ रचे अनेक विकट वादों से विजय करी जैन मत की ध्वजा फहराई। अनेक उपाधियें परमत वादों से जय करके भी सदैव काल जिनमार्गके तत्त्वोंको सर्वोत्तम बतलाया। इस पवित्र जैनमत के वास्ते अपनी आयु अर्पण करी॥

उदाहरण भगवान् श्री वर्द्धमान स्वामी के ९८० वर्ष के पश्चात श्री देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण जी महाराज ने महान् एक श्री चतुर् संघरूप सभास्थापित की जिस में ज्ञान के व्यवच्छेद होने के अनेक कारण बतलाये। फिर भी संघ की आज्ञानुकूल सूत्र पुस्तक रूढ़ किये जिनकी कृपासे आज दिन हम लोग जैन सिद्धान्त को जानते हैं। फिर जिन आचार्योंने अपनी विद्या द्वारा अपनी शक्तिद्वारा अनेक वादियों को जय कर के, अनेक राजे लोगों का प्रति बोध के यह परम पवित्र श्वेताम्बर पंथ (आपके) स्थापन किया॥

जिन के महान् परिश्रमका फल आप लोगों की दृष्टि गोचर होरहा है। अपि तु शोक से कहना पड़ता है जिन आचार्य्यों ने आप लोगों पर इतना परोपकार किया किन्तु आप लोगों ने उन के अमूल्य परिश्रम का फल कुछ भी न दिया शोक !!

भला क्या आप लोगों ने उनके नाम की कोई संस्था स्थापन करी ? क्या आप लोगोंने उन आचार्य्यों के रचित पुस्तकों को पढ़ा ? या उनका पुनरुद्धार किया ? कुछ भी नहीं तो क्या यह शोक का स्थान नहीं है ? अवश्य है ॥

भला आप दूर की वात जाने दीजिये। किन्तु समीप काल को लीजिये। उन्हीं आचार्य्यों में से एक महान् आचार्य्य परम जैनोद्योत करने वाले जिन्हों ने अनेक ही कष्ट सहन करके इस पवित्र जैन धर्म का स्थान २ प्रचार किया फिर पाषंड मत को पराजय किया पंजाब देश में जिन्हों ने विशेष करके जैनधर्म का प्रचार किया। सत्य मार्ग भव्य जनों को युक्ति पूर्वक बतलाया। ऐसे महान् गुणों के धारक श्रीमद् आचार्य अमर सिंह जी महाराज हुए हैं। तो भला आप लोगों ने उनका नाम चिरस्थायि बनाने का क्या प्रयत्न किया शोक। ऐसे परमोपकारी महात्मा के नाम से कोई भी संस्था न हो ॥

देखिये विशाल हृदय के धारक महान् आचार्य की दया इस हुंडावसर्प्पिणी काल के प्रभाव से मिथ्यात्वको सदैवकाल हो वृद्धि है इसी कारण से कितनेक अज्ञात जन यह कहने लग गये थे कि गृहस्थी लोगों को सूत्र पठन करने नहीं कल्पते हैं क्योंकि उन लोगों के मन में यह विचार था कि यदि गृहस्थ लोग भी सत्र पढ़ने लग जायेंगे तो उस का फल हमारे लिये शुभ न होगा इसलिये वह लोग सूत्र के पठन का गृहस्थ लोगों को निषेध करते थे ॥

अपितु उक्त विशाल हृदय महर्षिने सूत्रों द्वारा यह सिद्ध किया कि अर्हन् ज्ञान के चार ही संघ अधिकारी हैं चार ही सघ योग्यता धारण करते हुए सूत्रों को पढ़ सकते हैं। सो देखिये उक्त महर्षि ने कैसी

कृपा आप लोगों पर की है। कि आप लोग शास्त्र भली प्रकार से पढ़ सकते हैं। फिर और भी देखिये उक्त महात्मा के परिश्रम का फल इस पंजाब देशमें जिनके सत्योपदेश के द्वारा अनुमान १०० साधु १० या ७० गाया के अनुमान स्थान २ में जैन धर्म का प्रचार कर रहे हैं और भव्य लोगों को महंत के उपदेश के द्वारा सम्यक्त्व लाभ दिया रहे हैं सो यह सर्व श्रीमान् आचार्य अमरसिंह जी महाराज के परिश्रम का ही फल है जिस प्रकार उन महात्माओं ने हमारे ऊपर दया भाव किया है ॥

इसी प्रकार हम भी उक्त महात्मा के नामों परि को, पवित्र धर्म कार्य करें जिस के करने से हम अणाचीर्ण होवें सो वह कृत्य यह है स्थान २ उन के नाम से धर्म सत्कार्य स्थापन करें जैसे कि अमर जैन पाठशाला अमर स्कूल, अमर हाईस्कूल अमर कालिज अमर पुस्तकालय अमर औषधालय अमर जीव दया फंड अमर विधवा श्रम अमर अनाथाश्रम अमर गुरुकुल अमर ब्रह्मचारी आश्रम, अमर सार्वजनिकशाला अमर व्यायामशाला अमर विद्याशाला, अमर सर्व हितैषी संस्था इत्यादि आश्रम उक्त महर्षि के नामों परि स्थापन किये जावें तो हम ऋण से उत्तीर्ण हो सक्ते हैं ॥

इसीलिये हमारी सर्व भ्रातृगणों से प्रार्थना है कि वे शीघ्र ही यथा आवश्यकता उक्तसंस्था स्थापन करें और हमारी इच्छा इस समय अमर जैन हाईस्कूल स्थापन करने की है सो हमें सर्व प्रकार से हमारे भ्रातृगण्य सहायता दें जिस करके हम शीघ्र ही उक्त संस्था से लाभ लेवें क्योंकि यह सहायता आप लोगों को अपने परमाचार्य के नाम को अमर करने वाली और भी भगवत् प्रणीत धर्म के प्रकाश करने वाली है।

भवदीयानुचरो

श्रीमान् बाबू परमानंद जैन, बी०ए०एल०एल०बी०
वकील कसूर, वा लाला फत्तुराम (प्रियदर्शी) जैन लुधियाना

# अथ शुद्धि पत्रम् ।

प्रियसुज्ञ जनों ! पृष्ठ ८, ३४ ८६ की जन्म कुण्डलियों में किञ्चित् मात्र अशुद्धियें रह गई हैं इस कारण से निम्न लिखित कुण्डलियों को अनुक्रमता से शुद्ध ज्ञात करना चाहिये । यथा :—

**पृष्ट ८ की**

१
११ मो० सू०
२
१२ शु०
बु० १०
३ के०
चं० २ वृ० रा०
४
६
८
५
७ श०

**पृष्ट ३४ की**

के० ६
४ चं०
७
५ वृ०
३
श० ८
२
९
११ शु०
१
१० बु० मं० सू०
१२ रा०

**पृष्ट ८६ की**

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १ | ११ | करना | करें |
| २ | ९ | दूसर्ये | दूसबर्ये |
| ३ | १४ | माकश | प्रकाश |
| ३ | ११ | श्वेताम्बर | श्वेताम्बर |
| ३ | १७ | सनमतोपर | जैनमतऊपर |
| ५ | १७ | भीभी | भी |
| ६ | ४ | है | हैं |
| ६ | ६ | हैं | है |
| ६ | ७ | शुशोभित | सुशोभित |
| ६ | १२ | कुसम | कुसुम |
| ७ | २१ | पश्चिक | पश्चिम |
| ७ | २१ | मपण | मृपण |
| १० | १५ | पितनो | पितकी |
| १० | २२ | मूत | मुत |
| ११ | १८ | जिनक | जिनके |
| ११ | २० | क्षत्री | क्षत्रिय |
| १२ | १ | जप | जब |
| १२ | १२ | पच्चम | पञ्चम |
| १३ | १८ | सपक | सूपक |
| १४ | ३ | परचारक | प्रचारक |
| १४ | १२ | रूप | रूपी |
| १५ | १४ | मिथ्यात | मिथ्यात्व |
| १५ | १४ | दे खीये | देखिये |
| १५ | १९ | परषा | वर्षा |
| १५ | २१ | परषा | वर्षा |

| पृष्ट | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १६ | २ | वडिवं | वडियं |
| १६ | ४ | सूत्रानसार | सूत्रानुसार |
| १७ | २ | ह | है |
| १७ | ४ | सगे | सहोदर |
| १८ | ११ | फिरोज़पुर | फीरोज़पुर |
| १८ | १३ | चौमास | चौमास है |
| २० | १७ | पज्य | पूज्य |
| २० | २३ | अनिष्ट चरण को | अनिष्टाचरण को |
| २१ | १४ | विक्रमाब्द | विक्रमाब्द |
| २१ | २५ | क | के |
| २२ | १२ | िक | कि |
| २४ | १२ | करके | कुरि कि |
| २४ | १९ | सुत्र | सूत्र |
| २६ | २२ | ज्ञाति के | ० |
| २७ | ११ | पञ्चम् | पञ्चम |
| २८ | २४ | पश्चात् ॥ | पश्चात् |
| २९ | ४ | कच्चोरी | कचौरी |
| ३० | १३ | कशर | केशर |
| ३० | २५ | जन समावार | जैन समाचार |
| ३६ | २१ | प्रकृत्य | प्रकृति |
| ,, | २२ | जसे | जैसे |
| ३६ | २६ | डढ | डेढ़ |
| ३७ | ११ | मिथ्यात् | मिथ्यात्व |
| ३७ | २१ | जीका | जीको |
| ३८ | ५ | चातुराहार | चतुराहार |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ४० | १ | कल्पित विभागुख के | कल्पित |
| ४ | ४ | हे | है |
| ,, | १२ | मामापि | यद्यापि |
| ,, | १६ | मुखमर्दन | मुखमर्दन |
| ४१ | १० | अच्छेह | अच्छे हैं |
| ४१ | ११ | बचाव | बचाव |
| ,, | २१ | जैन | जैनमत के |
| ४४ | २५ | अनुकूल | अनुकूल |
| ४५ | १ | वहमे | वहमे |
| | ५ | माशित्रि | माशित्र |
| | १० | २ | २२ |
| ,, | २३ | अधार | अकबार |
| ४६ | १० | सविपर्य | सावियर्ज |
| ४७ | ९ | हैं | है |
| | १३ | उष्मोत्तप | उष्णीतप |
| , | १४ | निवृप | निवृप |
| | १५ | आस्वार्थ | अस्वार्थः |
| | १६ | द्वितियाध्याय हे | द्वितीयाध्याय है। |
| ,, | १७ | तृतिया | तृतीया |
| ४८ | ४ | साधुओं | साधुओं |
| ४९ | २५ | साधुअ | साधुओं |
| ५० | २१ | गमनो | मी |
| , | २३ | आत्मारामादिमम | आत्मारामादि |
| ५१ | ११ | साधुओं | साधूओं |
| ५२ | २१ | दिय | दिया |

| पृष्ट | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ५६ | २५ | बूटेरय | बूटेराय |
| ५७ | ७ | तपगच्छ | तपागच्छ |
| ,, | १८ | ओशवाळ | ओसवाल |
| ५८ | १५ | बटेराय | बूटेराय |
| ,, | १८ | स | से |
| ,, | १९ | जसे | जैसे |
| ५९ | २ | पूर्वोक्त | पूर्वोक्त, |
| ,, | २ | कितनहा | कितने ही, |
| ,, | २३ | साधू | साधु |
| ,, | २५ | कहसक्त | कहसकते |
| ६० | १६ | पजन | पूजन |
| ६० | २४ | भगवन | भगवान् |
| ६१ | १ | अहिसा | अहिंसा, |
| ६१ | २० | सत्रों | सूत्रों |
| ६१ | २० | पर्ण | पूर्ण |
| ६२ | १० | पज्य | पूज्य |
| ६३ | १० | कपूर | कपर |
| ६३ | २३ | हुं | हूं |
| ६५ | २ | लख | लख |
| ६५ | ९ | उद्धत | उद्धृत |
| ६६ | १ | वो | को |
| ६६ | २२ | को | को । |
| ६७ | २ | आर | और |
| ६७ | १७ | लिखवते | लिखते |
| ६७ | २१ | गमस्कार | नमस्कार |

| पृष्ट | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ८६ | ८ | ११क | ११के |
| ८७ | ७ | ै | है |
| ८८ | १ | जन | जैन |
| ८९ | ५ | लिखिने | लिखने |
| ८९ | २३ | आत्मराम | आत्माराम |
| ९० | २१ | आयहैं | आयथे |
| ९१ | १२ | के | 'के' |
| ९१ | १९ | होगया | होगये |
| ९२ | ३ | होवगा | होवेगा |
| ९२ | ७ | लिष्ट | लिष्टें |
| ९२ | ७ | जन | जैन |
| ९४ | १७ | पश्चात | पश्चात् |
| ९५ | १७ | पर्वत् | पर्वत |
| ९९ | ३ | जिनक | जिनके |
| ९९ | ९ | लोगो | लोगों |
| ९९ | १६ | षष्टम् अष्टम् | षष्टम अष्टम |
| १०० | ६ | ३ | ६ |
| १०० | १३ | श्रीहान् | श्रीमान् |
| १०१ | २१ | होवेगे | होवेंगे |
| १०२ | ५ | ह | है |
| १०३ | ८ | करनेंसे | करनेसे |
| १०४ | ४ | को | की |
| १०४ | ५ | अर्हन | अर्हन् |
| १०४ | २६ | सत्र | सूत्र |
| १०५ | २३ | लग | लगे |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १०७ | ११ | व | वे |
| " | १५ | ह | हैं |
| " | २२ | म | में |
| १०९ | २७ | सुवच्चतौळे | सुवचतळे |
| १११ | २१ | नही | नहीं |
| ११२ | १ | वबृषभ | वृषभ |
| " | २७ | मार्याय | मार्यायें |
| ११३ | ७ | सम्मत्यामुसार | सम्मत्यनुसार |
| ११३ | ७ | १९५२ | १९५१ |
| " | ३ | गयाचम्बोविका | मर्चिका |
| " | २३ | कसे | कैसे |
| ११४ | ११ | प परा | परंपरा |
| " | २५ | मतिपखा | मतिपखा |
| ११५ | २३ | नहीं है | नहीं है |
| ११६ | ३ | मोतीरम | मोतीराम |
| ११६ | २१ | १९११ | १९१२ |
| ११७ | १७ | मूति | मूर्ति |
| ११८ | ७ | में | में |
| " | ५ | स | से |
| " | १३ | खोपमें | खोपमें |
| " | १८ | म | मे |
| ११९ | १९ | क | के |
| १२० | १२ | मूर्यां | मूर्तियां |
| १२२ | २० | पजा | पूजा |

| पृष्ट | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १२२ | २ | सत्र | सूत्र |
| ,, | ३ | जी | जीके |
| ,, | १० | श्रीं | श्री |
| ,, | १७ | अर्थात | अर्थात् |
| ,, | २० | चत्य | चैत्य |
| ,, | २१ | शब्द | शब्द |
| ,, | २१ | करणी | करनी |
| ,, | २३ | चत्य | चैत्य |
| ,, | २३ | चत्य | चैत्य |
| ,, | २५ | मूर्नि | मूर्ति |
| १२३ | ८ | क | के |
| १२४ | ४ | अनक | अनेक |
| १२५ | ३ | १०६६ | १०६३॥ |
| ,, | ६ | ेणु | रेणु |
| १२६ | २४ | तृतींय | तृतीय |
| १२७ | २४ | कजियाखार | कजियाखोर |
| १३० | १ | सत्र | सूत्र |
| १३१ | २७ | पजा | पूजा |
| १३२ | १२ | हाताहै | होता है |
| १३३ | १९ | जाव | जीव |
| १३५ | ८ | शाटायन | शाकटायन |
| १३६ | २३ | वचह | कवह |
| १३७ | २१ | पसे | पैसे |
| १३९ | ४ | लोक | लोके |
| १४० | २१ | मोर | और |